महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अन्तर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

हिन्दी नीतिकाव्य और मूल्य चेतना

निर्धारित पाठ्यपुस्तक

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
चतुर्थ सेमेस्टर
प्रथम पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 19

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

1

हिन्दी नीतिकाव्य और मूल्य चेतना (निर्धारित पाठ्यपुस्तक)

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ चन्द्रकला त्रिपाठी
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक
कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© सम्पादक

प्रथम संस्करण : जून 2018

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना, संयोजन एवं पाठ-चयन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं टंकण

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

टंकण कार्य सहयोग (गिरिधर कविराय-कृत कुण्डलिया)

सुश्री राधा सुरेश ठाकरे
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र श्री राजदीपसिंह राठौर फोटोग्राफर एंड डॉक्यूमेंटेशन सहायक, जनसंपर्क विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से साभार प्राप्त

हम उन समस्त साहित्यकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिनकी कृतियों का उपयोग प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में किया गया है। हम उन समस्त रचनाकारों, अनुवादकों, सम्पादकों, संकलनकर्त्ताओं, सर्वाधिकारधारकों, प्रकाशकों, मुद्रकों एवं इंटरनेट स्रोतों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनकी सहायता से प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में संकलित रचनाओं के पाठ उपलब्ध हुए हैं।

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यपुस्तक दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- इस पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किए गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

अपनी बात

बीते दशकों में विकास की प्रक्रिया बहुत तीव्र हुई है। शिक्षा, चिकित्सा, खेल आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित हुए हैं। भौतिक संसाधन बढ़े हैं, दूरियाँ घटी हैं, तकनीकी सुख-सुविधाओं का विस्तार हुआ है, बावजूद इसके प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के पास समय की कमी महसूस की जा रही है। सूचना-संग्रहण और तथ्य-संकलन की क्षमता एवं प्रवृत्ति का विस्तार हुआ है किन्तु अध्ययन, चिन्तन और मनन की प्रवृत्ति नष्ट होती जा रही है। आजीविका हेतु नवीन कार्यक्षेत्रों का उद्‌घाटन हुआ है किन्तु कठोर परिश्रम करके खाने-कमाने की प्रवृत्ति विकसित नहीं हो पा रही है। कर्त्तव्य से विमुख होकर केवल अधिकार-प्राप्ति के प्रति आतुरता दिखाई देती है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक और ईश्वर को कोरी परिकल्पना सिद्ध करने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि नैतिकता, जीवन-मूल्य और आदर्श बेमानी हो चले हैं। अवसरवादिता की प्रवृत्ति ने छल-छद्मपूर्ण जीवनचर्या को ही आदर्श और सफल जीवन शैली घोषित कर दिया है। 'देने' की प्रवृत्ति का लगभग नाश हो चुका है जबकि दोहन की लालसा निरन्तर बढ़ती जा रही है। केवल 'पाने' की कुत्सा के दुष्परिणामों का अनुमान नष्ट होते पर्यावरण को देखकर सहज ही किया जा सकता है। वर्तमान विकृत परिदृश्य महज एक आईना है। ऐसी स्थितियों में आने वाली पीढ़ियाँ किस परिवेश में कैसा जीवन जीएँगी ! यह सोचना भयावह है।

आज भी अनेक विद्यालयों में प्राथमिक शिक्षा के दौरान नैतिक शिक्षा का पाठ प्रमुखता से पढ़ाया जाता है। माध्यमिक कक्षाओं में यह गौण हो जाता है। उच्च माध्यमिक कक्षाओं में इसका स्थान दूसरे विषय ले लेते हैं। स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर तो इसकी तलाश करना ही व्यर्थ है। सच तो यह है कि शिक्षित होने के बाद ही मनुष्य जीवन का दूसरा प्रमुख चरण प्रारम्भ होता है। स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर ही उसे नैतिक शिक्षा दिए जाने की सर्वाधिक आवश्यकता होती है क्योंकि यहाँ से शिक्षित होने के पश्चात् ही उसका सामाजिक दायित्व-निर्वहन के क्षेत्र में अवगाहन होता है।

इसी चिन्ता को लक्ष्य कर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के दूर शिक्षा निदेशालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में समाविष्ट करने हेतु **हिन्दी नीतिकाव्य और मूल्य चेतना** पाठ्यचर्या की संकल्पना की गई है। इस पाठ्यचर्या के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन अट्ठारह विशिष्ट कवियों को वर्गीकृत किया गया है जिनके नीतिकाव्य में अभिव्यक्त शारीरिक, चारित्रिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन-मूल्यों का विस्तृत विवेचन मिलता है।

नीतिकवियों द्वारा विरचित काव्य मनुष्य को जीवनोपयोगी संस्कार और नैतिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करता है। उक्त पाठ्यचर्या के समावेश से न केवल समाजोपयोगी शिक्षा का प्रचार-प्रसार होगा प्रत्युत हिन्दी नीतिकाव्य-परम्परा के प्रायः विस्मृत नीतिकवियों को महत्त्व दिए जाने का उद्देश्य भी सिद्ध होगा। इत्यलम्।

❖❖❖

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कवि	पृष्ठ क्रमांक
01.	कबीर	06 – 16
02.	रज्जब	17 – 24
03.	सुन्दरदास	25 – 34
04.	तुलसीदास	35 – 47
05.	रहीम	48 – 62
06.	बिहारीलाल	63 – 72
07.	वृन्द	73 – 86
08.	घाघ	87 – 103
09.	भड्डरी	104 – 116
10.	गिरिधर कविराय	117 – 128
11.	दीनदयाल गिरि	129 – 134
12.	रैदास (रविदास)	135 – 139
13.	नानक	140 – 147
14.	रसखानि	148 – 154
15.	जमाल	155 – 155
16.	रामसहाय दास	156 – 156
17.	सम्मन	157 – 157
18.	बेताल	158 – 159

कबीर

साखी

(1)

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूँद तिहुँ भाइ॥

शब्दार्थ – मूरिष = मूर्ख, अज्ञानी, अविवेकी। जलि = जल (नदी, सागर, आपदा, विपत्ति, भव-सागर)। तिराइ = पार लगाना। कदली = केले का पेड़। सीप = सीपी। भवंग (भुजंग) = साँप, सर्प। मुषी = मुख। तिहुँ = तीन। भाइ = भाँति, प्रकार रूप।

(2)

हरिजन सेती रूसणाँ, संसारी सूँ हेत।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूँ कालर का खेत॥

शब्दार्थ – हरिजन = प्रभुभक्त। सेती = से, साथ। रूसणाँ = विमुख रहना। संसारी = सांसारिक लोग, जो विषय-वासना और विकारों में उलझे रहने को ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य मान बैठे हैं। सूँ = से। हेत = प्रेमभाव रखना। कदे = कभी भी। नीपजै = निपजना, उत्पन्न होना, पैदा होना, विकसित होना, सफल होना। कालर = कल्लर, ऊसर।

(3)

मारी मरूँ कुसंग की, केला काँठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि॥

शब्दार्थ – केला = केलि। काँठै बेरि = कंटीले बेर का पेड़ (बेरड़ी)। वो हालै = उसका हवा के स्पर्श से हिलना। वो चीरिये = उसके कोमल पत्तों का चीरा जाना। साषित = शाक्त, दुष्ट। बेरि = बेर-बेर, पुनः पुनः, फिर-फिर।

(4)

मेर नसाँणी मीच की, कुसंगति ही काल।
कबीर कहै रे प्राँणिया, बाँणी ब्रह्म सँभाल॥

शब्दार्थ – मेर = मेरा, ममत्व । नसाँणी = निशानी (कारण), प्रतीक, चिह्न । मीच = मृत्यु, मौत । काल = मृत्यु । बाँणी = वाणी, जिह्वा, वचन । सँभाल = स्मरण कर ।

(5)

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरै भर्‌या, साधूँ निंद्या सोइ ॥

शब्दार्थ – करणीं (करनी) = कार्य, कर्म, कृत्य, करतूत, करतब । सोवन = स्वर्ण, सोना । कलस = घड़ा, गगरा । सुरै = सुरा, मदिरा ।

(6)

कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करे, सो तैसे फल खाइ ॥

शब्दार्थ – पंषी = पंछी, पक्षी ।

(7)

जेता मीठा बोलणाँ, तेता साध न जाँणि ।
पहली थाह दिखाई करि, ऊँडै देसी आँणि ॥

शब्दार्थ – साध = अच्छा व्यक्ति, उत्तम, सज्जन, साधु, महात्मा, योगी । पहली (पहले) = प्रारम्भ में । थाह = गहराई की हद, किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय, अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान । ऊँडै = गहरे, गहराई में । देसी = देंगे (गिरा देंगे) ।

(8)

कबीर संगति साध की, बेगि करीजैं जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥

शब्दार्थ – बेगि = जल्दी, शीघ्रता । करीजैं = करो ! । जाइ = जाकर । दुरमति = दुर्बुद्धि । दूरि गँवाइसी = नष्ट कर देंगे । सुमति = सन्मति, सद्‌बुद्धि । देसी = प्रदान करेंगे ।

(9)

कबीर चन्दन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास॥

शब्दार्थ – बिड़ा = विटप, बिरवा, पेड़। आक = मदार। पलास = पलाश, ढाक, टेसू, केसु।

(10)

कबीर खाई कोट की, पांणी पीवे न कोइ।
आइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ॥

शब्दार्थ – खाई = वह नहर जो किसी गाँव, किले, बाग या महल आदि के चारों ओर रक्षा के लिए खोदी गई हो। कोट = दुर्ग, गढ़, किला। गंगोदिक (गंगोदक) = गंगाजल।

(11)

निरबैरी निहकाँमता, साँई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै, संतहि का अँग एह॥

शब्दार्थ – निरबैरी = बैर और द्वेष-राहित्य भाव वाला। निहकाँमता = निष्कामी। साँई = स्वामी, परमात्मा। सेती = से, साथ। नेह = स्नेह, प्रेम। विषिया = विषय, भोग। न्यारा = अलग, दूर।अँग = लक्षण।

(12)

संत न छाँड़ै संतई, जे कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत॥

शब्दार्थ – संतई = संतपना, साधुता। असंत = दुर्जन, दुष्ट। भुवंगा (भुजंग) = साँप, सर्प।

(13)

चंदन की चुटकी भली, नाँ बँबूर की अँबराउँ।
बैश्नौं की छपरी भली, नाँ साकत का बड़ गाउँ॥

शब्दार्थ – चुटकी = न्यूनता। बँबूर = बबूल। अँबराउँ = बगीचा, बहुलता। छपरी = झोंपड़ी, मढ़ी। साकत = दुष्ट।

(14)

जैसी उपजै पेड़ मूँ, तैसी निबहै ओरि।
पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि॥

शब्दार्थ – जैसी उपजै पेड़ मूँ = जिस प्रकार वृक्ष में क्रम से फल लगते हैं, एक साथ नहीं। तैसी निबहै ओरि = वैसा ही निर्वाह कठिन होता है। पैका पैका जोड़ताँ = पैसा-पैसा जोड़ने पर लाखों-करोड़ों जुड़ जाया करते हैं। (किन्तु मूर्ख व्यक्ति बचत करने में विश्वास नहीं करता। प्रदर्शन और फिजूलखर्ची में ही उसकी प्रवृत्ति अधिक होती है।)

(15)

ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ॥

शब्दार्थ – बाँणी = वचन। आपा = अहंकार।औरन = अन्य।

(16)

माँनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ए सबहीं अहला गया, जबहीं कह्या कुछ देह॥

शब्दार्थ – माँनि = सम्मान। महातम = माहात्म्य। प्रेम = प्रेमभाव। रस = आनन्द। गरवा = गर्व, गौरव। तण = तन। गुण = लक्षण, विशिष्टताएँ। नेह = स्निग्धता। अहला गया = नाश हो गया। जबहिं = जब भी। कहा = (किसी से) कहा। कछु = कुछ। देह = याचना की।

(17)

पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरंग न होइ।
कबीर त्याग्या ग्यान करि, कनक कामनी दोइ॥

शब्दार्थ – पासि = रंग पक्का करने का पदार्थ (फिटकरी)। बिनंठा = बिना। सुरंग = सुन्दर रंग का, जिसका रंग सुन्दर हो।ग्यान करि = ज्ञान, विवेकपूर्ण विचार करके। कनक = स्वर्ण, धन, पैसा। कामनी (कामिनी) = काम-वासना को उद्दीप्त करने वाली स्त्री, नारी का वह रूप जो चित्त को भ्रमित करता है।

(18)

जाता है सो जाँण दे, तेरी दसा न जाइ।
खेवटिया की नाव ज्यूँ, घणों मिलैंगे आइ॥

शब्दार्थ – दसा = दशा, मनःस्थिति। खेवटिया = खेवट, मल्लाह। घणों = बहुत, अनेक।

(19)

दावै दाझण होत है, निरदावै निरसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गणै इंद्र कौ रंक॥

शब्दार्थ – दावै = दावा करना, अधिकार जाताना, ममता करना। दाझण (दाझन) = जलन। निरसंक (निःशंक) = भयहीन, निडर, निर्भय, जिसे डर न हो, जिसे किसी प्रकार का खटका या हिचक न हो। निरदावै = ममता रहित।

(20)

साईं सूँ सब होत है, बंदे थैं कछु नांहिं।
राई थैं परबत करै, परबत राई माँहिं॥

शब्दार्थ – थैं = से, की ओर से। परबत = पर्वत।

(21)

खूँदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ॥

शब्दार्थ – खूँदन = पैरों से रौंदना। बनराइ (वनराजि) = वृक्ष समूह, वृक्षावली, तरुपंक्ति, वनस्पति। कुसबद (कुशब्द) = बुरे शब्द। हरिजन = प्रभुभक्त।

(22)

रोड़ा ह्वै रयौ बाट का, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान॥

शब्दार्थ – रोड़ा = पत्थर। बाट का = मार्ग का, रास्ते का, पथ का। बाट का रोड़ा = मार्ग का पत्थर यानी सहनशील।

(23)

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
जानूँ कली कनीर की, तन रातो मन सेत॥

शब्दार्थ – जानूँ = जानो, समझो। कनीर (कनेर) = कनेर का वृक्ष या फूल। रातो = लाल। सेत = श्वेत, खाली, रिक्त, फीका।

(24)

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास॥

शब्दार्थ – कमोदनी = कुमुदिनी। जलहरि (जलहर) = तालाब, सरवर, जलाशय। भावता = रुचि, प्रवृत्ति, प्रेमी, भाव रखने वाला।

(25)

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं के हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाँड़ै खेत॥

शब्दार्थ – परषिये (परखिए) = परीक्षा कीजिए, समझिये। धणीं = स्वामी। के हेत = के हित में, के लिए। पुरिजा पुरिजा (पुर्जा-पुर्जा) = खण्ड-खण्ड, टुकड़े-टुकड़े। खेत (क्षेत्र) = रणक्षेत्र, युद्धक्षेत्र।

(26)

कायर बहुत पमाँवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काँम पड्याँ ही जाँणिहै, किसके मुख परि नूर॥

शब्दार्थ – पमाँवहीं = पोमाना, बहलाना, फुसलाना, डींग हाँकना। नूर = चमक।

(27)

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥

शब्दार्थ – खाला = माता की बहिन, मौसी। सीस उतारै हाथि करि = निज मस्तक काट कर हाथ पर धरना (अपना अहंकार नष्ट कर सर्वस्व समर्पित करना)। पैसे = प्रवेश करना, प्रवेश करे।

(28)

प्रेम न खेतौं नींपजे, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ॥

शब्दार्थ – नींपजे (नीपजे) = निपजना, उत्पन्न होना, पैदा होना। हाटि (हाट) = गाँव के मेलों में सजने वाली दुकानें। परजा = प्रजा, आम आदमी।

(29)

भगति दुहेली राँम की, नहिं कायर को काम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम॥

शब्दार्थ – दुहेली (दुहेला) = कठिन, दुःखदायी, दुःसाध्य खेल। राँम = निर्गुण-निराकार ब्रह्म। लेसी = लेगा, ले सकेगा।

(30)

टूटी बरत अकास थैं, कोई न सकै झड़ झेल।
साध सती अरु सूर का, अँणी ऊपिला खेल॥

शब्दार्थ – बरत = रस्सी। अकास = आकाश, आसमान। झड़ = झटपट (जल्दी)। साध = सच्चा साधु, सज्जन। सती = पतिव्रता नारी। सूर = सच्चा शूरवीर। अँणी ऊपिला खेल = सेना, युद्ध का खेल। अँणी ऊपिला = शूली की नोंक के ऊपर का अर्थात् अत्यन्त कठिन। ऊपिला = ऊपर का, विशिष्ट।

(31)

जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ॥

शब्दार्थ – आँथवै = अस्त होगा। कुमिलाइ = कुम्हलाएगा, मुरझाएगा। चिणियाँ = चुना गया है। ढहि = ढह कर। पड़ै = नष्ट हो जाएगा।

(32)

पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति॥

शब्दार्थ – पाँणी = पानी, जल। केरा = का। बुदबुदा = बुलबुला।जाति = जीवन, स्वरूप, अस्तित्व। परभाति = प्रभातकाल में।

(33)

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाँणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस॥

शब्दार्थ – गरबियौ = घमण्ड, अभिमान, दर्प करना। गहै = गहना, पकड़ना। कर = हाथ। केस = केश, बाल। मारिसी = मारेगा। कै = अथवा, या।

(34)

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चलै बजावणहार॥

शब्दार्थ – जंत्र = तन्त्र वाद्य, बाजा (यहाँ प्राणी की देह की ओर संकेत किया गया है)। न बाजई = नहीं बजेगा। चलै बजावणहार = बजाने वाला चला गया (आत्मा ने देह का त्याग कर दिया)।

(35)

बरियाँ बीती बल गया, बरन पलट्या और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्याँ कत ठौर॥

शब्दार्थ – बरियाँ = बारी, अवसर, समय, काल। बरन = वर्ण, रंग।और = अन्य, दूसरा। बाहुड़ै = सुधरना, बाहुड़ना, बहुरना। कर = हस्त, हाथ। छिटक्याँ = छिटकना। कत = कहाँ। ठौर = जगह, पता, स्थान, ठिकाना।

(36)

काची काया मन अथिर, थिर थिर काँम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत॥

शब्दार्थ – काची = कच्ची, नाशवान। काया = शरीर, देह। अथिर = अस्थिर, चंचल।थिर = स्थिर, अचल, स्थायी। निधड़क = निःशंक, बेरोक, बेखटके, बिना किसी संकोच या हिचक के, बिना किसी भय और चिन्ता के, बिना किसी रुकावट के।

(37)

कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाइ।
बच्छा था सो मरि गया, ऊभी चाँम चटाइ ॥

शब्दार्थ – अंधला = अंधा । गाइ = गाय । बच्छा = बछड़ा । ऊभी = खड़ी-खड़ी । चाँम = चमड़ा, मृत देह ।

(38)

जब गुण कूँ गाहक मिलैं, तब गुण लाख बिकाइ ।
जब गुण कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाइ ॥

शब्दार्थ – गाहक = पारखी, कद्र करने वाला, महत्त्व समझने वाला । लाख बिकाइ = बहुत मूल्यवान समझा जाना (अपेक्षित महत्त्व मिलना) । कौड़ी = मुद्रा की सबसे छोटी इकाई जो अब प्रचलन से बाहर हो चुकी है (निरर्थक) ।

(39)

कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ ।
बगुला मंझ न जाँणई, हंस चुणे चुणि खाइ॥

शब्दार्थ – लहरि (लहर) = लहरें । समंद (समुद्र) = सागर । मंझ = मन्द मति, मूढ़, मूर्ख ।

(40)

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसै घटि घटि राँम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि॥

शब्दार्थ – कस्तूरी = भूरे रंग का चिकना, सुगन्धित, अत्यधिक मूल्यवान द्रव्य, जो वीवर (हिमालय से आसाम तक बहुत ऊँचाई वाले क्षेत्र में पाया जाने वाला एक प्रकार का नर मृग) नामक जन्तु की नाभि से निकलता है । एक वीवर की नाभि में कस्तूरी का नाफा मुर्गी के अंडे के बराबर होता है । एक नाफे में लगभग आधी छटाँक (अढाई तोला) कस्तूरी निकलती है । यह विशेषकर द्रव्यों को सुगन्धित करने के काम में आती है । कुंडलि (कुण्डलिनी) = नाभि क्षेत्र । बन (वन) = वन क्षेत्र, जंगल । घटि घटि = घट-घट में, प्राणी मात्र के हृदय में । राँम = निर्गुण-निराकार परब्रह्म, ईश्वर ।

(41)

ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट माँहि।
मूरखि लोग न जाँणही, बाहरि दूँढण जाँहि॥

शब्दार्थ – पूतली (पुतली) = आँख का काला भाग जिसके बीच में वह छेद होता है जिससे होकर प्रकाश की किरणें भीतर जाती हैं और पदार्थों का प्रतिबिम्ब उपस्थित करती हैं, नेत्र में ज्योतिष्केन्द्र के चारों ओर का कृष्णमण्डल। खालिक = बनाने वाला, सिरजनहार, स्रष्टा, सृष्टिकर्त्ता। घट माँहि = घट ही में है, हृदयस्थ है। बाहरि = बाहर, मन्दिर-मस्जिद और तीर्थस्थलों में।

(42)

दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपने च्यँति न आवई, जिनकी आदि न अंत॥

शब्दार्थ – दोख = दोष। पराये = अन्य।

(43)

निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पाँणीं बिना, निरमल करै सुभाइ॥

शब्दार्थ – निंदक = निन्दा करने वाला। नेड़ा = नजदीक, निकट, समीप। आँगणि = आँगन। कुटी = कुटिया, घर। साबण = साबुन। पाँणीं = पानी, जल। सुभाइ = स्वभाव।

(44)

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्याँ सुख ऊपजै, और ठग्याँ दुख होइ॥

शब्दार्थ – आप = स्वयं। ठगाइये = ठगे जाना, लुटना, नुकसान उठाना।

(45)

झिरिमिरि झिरिमिरि बरषिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोही तेह॥

शब्दार्थ – झिरिमिरि (झिलमिल) = रह-रह कर। बरषिया = बरसना। पाँहण = पाषाण। मेह = मेघ, कृष्णवर्णी जलयुक्त बादल। माटी = मिट्टी। गलि = गलकर। सैंजल = जल के समान, जल से

युक्त, जल या पानी के साथ। भई = हो गई। वोही = वही, वैसा ही। तेह = रूप, स्वभाव, कठोर, घमण्ड।

(46)

ऊँचा कुल के कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार॥

शब्दार्थ – ऊँचा = ऊँचाई वाला, उच्च, श्रेष्ठ। कुल = वंश, प्रजाति। बंस = बाँस। बध्या = बढ़ा। अधिकार = साधिकार, अधिकार सहित। बास = गन्ध। भेदै = प्रभावित होना, विद्ध होना, ग्रहण करना। जाल्या सब परिवार = (अपने ही घर्षण से, अपनी ही रगड़ से) अपने पूरे परिवार को जला डालता है।

(47)

कबीर चंदन के निड़ै, नींव भी चंदन होइ।
बूड़ा बंस बड़ाइताँ, यौं जनि बूड़ै कोइ॥

शब्दार्थ – निड़ै = निकट, नजदीक, पास। नींव = नीम। बूड़ा = डूबा। बंस (वंश) = कुल, ख़ानदान। बड़ाइताँ = पद, मान-मर्यादा, वयस्, विद्या, बुद्धि आदि के अभिमान से। यौं = इस प्रकार। जनि = नहीं, मत। बूड़ै = डूबे।

❖❖❖

रज्जब

साखी

(1)

मान रहित अरु मान में, सुमन समुद सम देख ।
संपत्ति मिले सो ना बधे, घटे न विपति विशेष ॥

भावार्थ – समुद्र को वर्षाकाल में नदियों द्वारा जल रूप सम्पत्ति मिलने पर समुद्र बढ़ता नहीं और ग्रीष्म ऋतु में न आने से घटता नहीं, वैसे ही सम्पत्ति-विपत्ति में सम रहने वाले सन्तों का मन अपमान होने पर और सम्मान होने पर सम देखा जाता है। न सम्मान से सुखी होना और न अपमान को विपत्ति मानना, यही सन्तों की विशेषता है।

(2)

संपत्ति में सूधे दरस, विपत्ति मध्य बहु बंक।
रज्जब सुमन मयंक से, नहिं ईश्वर नहिं रंक ॥

भावार्थ – चन्द्रमा सोलह कला रूप सम्पत्ति के समय सीधा दिखाई देता है और शुक्ल पक्ष की द्वितीया के दिन उसकी दो कला रहती है, तो भी उसमें वक्रता रहती है, अर्थात् वह विपत्ति में दीन नहीं होता, वैसे ही सन्तों के सुन्दर मन भी चन्द्रमा के समान ही रहते हैं, उनमें सम्पत्ति के समय ईश्वरता और विपत्ति के समय रंकता नहीं आती।

(3)

संपति में सिमटी रहै, विपति वीगसे जोय।
साधु कली ज्यों जाय की, गुण नहिं व्यापै कोय ॥

भावार्थ – सन्त जाय-बेलि के पुष्प की कली के समान हैं, जैसे वह वृक्ष के लगी रहती है तब तक तो सिकुड़ी रहती है और वृक्ष से अलग होने लगती है तब खिल जाती है, वैसे ही सन्तों का जब तक माया से सम्बन्ध रहता है तब तक तो वे संकुचित रहते हैं किन्तु जब माया का अभाव रूप विपत्ति आती है तब वे वैराग्य से विकसित हो जाते हैं, फिर उनको कामादि कोई भी गुण व्यथित नहीं करता।

(4)

तन मन तेल कड़ाह विधि, तपता शीतल होय ।
सो साधू स्रक बावना, रज्जब लीजे जोय ॥

भावार्थ – कड़ाह के तपे हुए तेल में फूलमाला डालने पर तेल शीतल हो जाय, तो समझना चाहिये यह माला बावने चन्दन के फूलों की है, वैसे ही दुःखों से सन्तप्त तन-मन को अपने उपदेश से शीतल कर दे, वही सन्त है। यही सन्त और बावने चन्दन की परीक्षा है।

(5)

ढोल दमामा थाल शिर, डंका एकहि होय ।
त्यों वायक बहुगुण भऱ्या, बूझे विरला कोय ॥

भावार्थ – ढोल, नगाड़ा और थाल, इन तीनों पर एक ही डंका पड़ता है, किन्तु ध्वनि भिन्न-भिन्न निकलती है, उस ध्वनि से ही पहचान होती है कि यह उसकी आवाज है, वैसे ही एक प्रश्न से ही प्राणियों के मुख से अनेक वचन निकलते हैं और वे बहुत गुणों से भरे रहते हैं, उनको कोई विरला विचारशील मनुष्य ही समझ पाता है और वही साधु की परीक्षा कर सकता है।

(6)

पाणी अरु पाषाण के, पर्वत पृथ्वी माँहि ।
एक समाये सूर में, इक अवनि सु छाड़े नाँहि ॥

भावार्थ – पृथ्वी में बर्फ और पत्थर दोनों ही प्रकार के पर्वत हैं, किन्तु बर्फ के पर्वत तो सूर्य में समा जाते हैं, अर्थात् गलकर किरणों द्वारा ऊँचे चढ़ जाते हैं, किन्तु पत्थर के पर्वत पृथ्वी को नहीं छोड़ते, वैसे ही सन्त तो ब्रह्म में मिल जाते हैं किन्तु असन्त संसार को नहीं छोड़ते।

(7)

रज्जब सोना शैल सुत, तुले बराबर तोल ।
जो कुछ आघन एक ह्वै, लहै न समसरि मोल ॥

भावार्थ – सोना और पर्वत का पुत्र पत्थर तुला में तोल में बराबर तुलने पर भी पत्थर का आदर सोने के समान नहीं होता और न सोने के समान पत्थर का मूल्य मिलता है, वैसे ही साधु-असाधु के शरीर-वेशभूषा के द्वारा समान दीखने पर भी असाधु साधु के समान नहीं हो सकता।

(8)

साधू कोयल काग जग, दर्श एक उनमान।
जन रज्जब बोले विलगि, खान पान पहचान॥

भावार्थ – कोयल और काक दोनों के रंग देखने से तो अनुमान होता है कि दोनों एक जाति के पक्षी होंगे, किन्तु उनकी आवाज, विशेष प्रकार की गति, खान-पानादि से ही उनकी पहचान होती है, वैसे ही सन्त-असन्त भी समान ही दीखते हैं, किन्तु उनके वचन, विशेष भाव-विचार और खान-पानादि व्यवहार से ही उनकी पहचान होती है।

(9)

संसारी अरु साधु का, पाया भेद विज्ञान।
रज्जब पारस जल तिरे, बूडे सोइ पषान॥

भावार्थ – असाधु (संसारी) और साधु के भेद का विज्ञान (पहचान) हमने जान लिया है कि उनमें क्या भेद है, जैसे जल पर तिरने वाला पत्थर तो पारस होता है और डूबने वाला पत्थर, वैसे ही संसार से ऊपर परमात्मा के स्वरूप में जिसकी वृत्ति रहती है वही सन्त है और जिसकी वृत्ति संसार के विषयों में रहती है, वह असन्त है।

(10)

जैसे चन्दन बावना, वेधि गया वनराय।
त्यों रज्जब पलटे सबै, साधू संगति आय॥

भावार्थ – जैसे बावने चन्दन की सुगन्ध से सभी वन-पंक्ति विद्ध (सुगन्धित) हो जाती है, अर्थात् सभी वृक्ष चन्दन बन जाते हैं, वैसे ही साधु-संगति से सभी बदल जाते हैं, अर्थात् सन्त बन जाते हैं।

(11)

रज्जब लघु दीरघ मिलत, मान महातम जोय।
यथा तक्र पय परसतें, जावणहुँ दधि होय॥

भावार्थ – जैसे थोड़ी-सी छाछ दूध में मिलती है, तब वह जावण (दूध) भी दही बन जाता है, वैसे ही यह बात निश्चित रूप से मानने योग्य है कि जब छोटे बड़ों से मिलते हैं तब छोटों का माहात्म्य बढ़ जाता है, अर्थात् साधारण जीवों की भी सन्त-संग से उन्नति हो जाती है।

(12)

पारस चुंबक लोह मिल, पुनि चन्दन वनराय।
जड़ पलटे मृतक चलहिं, त्यों सत्संगति आय॥

भावार्थ – पारस के संग से जड़ लोहा सुवर्ण रूप में बदलता है, चन्दन के संग से जड़ वन-पंक्ति (वनराजि) के वृक्ष चन्दन रूप में बदलते हैं और मृतकवत् लोहा चुम्बक के संग से चलने लगता है, वैसे ही सत्संगति में आने से जड़ अज्ञानी प्राणी ज्ञानी रूप में बदलता है तथा परमार्थ में न चलने वाला मृतकवत् प्राणी साधन द्वारा परमार्थ में चलने लगता है।

(13)

रज्जब पलटे जीव सुध, साधू संगति आय।
पारस लोहा पुहुप तिल, स्रक चन्दन वनराय॥

भावार्थ – जैसे पारस से लोहा सुवर्ण रूप में, पुष्पों से तिल-तैल सुगन्ध रूप में, निर्गन्ध पुष्प-माला चन्दन के इत्र सुगन्ध से सुगन्ध रूप में और चन्दन वृक्ष से वन-पंक्ति (वनराजि) के वृक्ष चन्दन रूप में बदल जाते हैं, वैसे ही सरल स्वभाव वाले साधारण जीव भी साधु-संगति में आकर सन्त रूप में बदल जाते हैं।

(14)

यथा नगारा चोट सुन, हिम गिरि करे उपाधि।
जन रज्जब यूँ जानियँहिं, तहाँ मौन व्रत साधि॥

भावार्थ – नगाड़े पर डंका की चोट पड़ने पर उसकी मंगल रूप ध्वनि से भी हिमालय पर्वत बर्फ के शिखर गिराना रूप उपाधि (क्रिया) करने लगता है, वैसे ही यदि कोई हितकर शब्द बोलने पर भी उपाधि करने लगे तो वहाँ यही जानना चाहिये कि यहाँ मौन व्रत धारण करना ही अच्छा है।

(15)

लघु को बंदै लोग सब, लघु को लेहिं सु गोद।
जन रज्जब जोया नजरि, देखो शशि अरु कोद॥

भावार्थ – हमने दृष्टि से देखा है, परखा है, तुम भी देखो ! द्वितीया के छोटे चन्द्रमा को सब प्रणाम करते हैं तथा छोटे बच्चे को सभी क्रोड़ (गोद) में लेते हैं, अतः लघुता अच्छी है।

(16)

अनल पंखि पावे नहीं, सो मधु मांखी लेहिं।
रज्जब रज गज ना लहै, सो मीठा मसियहिं देहिं॥

भावार्थ – पुष्पों से शहद को महान् अनल पक्षी नहीं निकाल सकता, किन्तु छोटी-सी शहद की मक्षिका (मक्खी) निकाल लेती है। रेते में मिली हुई शक्कर को महान् हाथी नहीं निकाल सकता किन्तु छोटी-सी मक्खी वा चींटी निकाल लेती है, यह लघुता की ही विशेषता है।

(17)

रज्जब रज ऊँची चढ़ी, तो तामें क्या वित वीर।
साँई सौंपी शक्ति सब, नीचा चलतों नीर॥

भावार्थ – हे भाई ! रज ऊँची चढ़ती है तो उसमें क्या विचार करना ? क्योंकि यह तो उसकी ईश्वरप्रदत्त लघुता की विशेषता होती है। इसी प्रकार जल आकाश से नीचे आता है शायद इसी से उसे परमात्मा ने उत्पत्ति, पोषण आदि की सब शक्ति दी है, ठीक वैसे ही जो नम्र होता है उसी को प्रभु विशेष शक्ति प्रदान करते हैं।

(18)

जड़ नीचहुँ, ऊँचे गये, रज्जब नर तरु साखि।
मनसा वाचा कर्मना, तातें लघुता राखि॥

भावार्थ – भारी होने से वृक्ष की जड़ नीचे ही रहती है और हलके होने से शाखाएँ – पत्र, फूल, फल ऊँचे रहते हैं, वैसे ही जो नर अपने को बड़ा मानते हैं वे नीचे रहते हैं और जो अपने को लघु मानते हैं वे मन, वचन और कर्म से ऊँचे अर्थात् श्रेष्ठ होते हैं, इससे हृदय में लघुता ही रखनी चाहिये।

(19)

मातंग महोदधि नीपजैं, मुक्ता उभय मँझार।
रैणायर गरबै नहीं, गरबै गज सु गँवार॥

भावार्थ – हाथी और समुद्र दोनों में मोती उत्पन्न होते हैं। समुद्र में अधिक मोती होते हैं तो भी वह गर्व नहीं करता और हाथी में थोड़े होने पर भी वह गर्व करता है, वैसे ही सन्तों में बहुत गुण होने पर भी वे गर्व नहीं करते और दुर्जनों में थोड़ा-सा गुण हो तो भी वे गर्व करते हैं।

(20)

नाल खाल नौ सौ लियूँ, नदीनाथ गर्जाय।
सो अगस्त्य अचवन कियो, मत कोई गर्वाय॥

भावार्थ – नौ सौ नदी-नालों को लेकर समुद्र गर्जना करता है किन्तु उसको भी अगस्त्य पान कर गए, इसलिये किसी को भी गर्व नहीं करना चाहिये।

(21)

प्रेम प्रीति हित नेह के, रज्जब दु विधा नाँहिं।
सेवक स्वामी एक ह्वैं, आये इस घर माँहिं॥

भावार्थ – प्रेम, प्रीति, हित, स्नेह, इन शब्दों का अर्थ जिसमें हो, उसके हृदय में दुविधा (द्विविधा, द्वन्द्व) नहीं रहती, इस प्रेम रूप घर में आने पर तो सेवक-स्वामी दोनों एक ही हो जाते हैं।

(22)

प्रेम प्रीति हित नेह की, रज्जब ऊबट बाट।
सेवक को स्वामी करहि, स्वामी सेवक ठाट॥

भावार्थ – प्रेम, प्रीति, हित, स्नेह, इनका मार्ग बड़ा अटपटा है, सेवक को स्वामी बना देता है और स्वामी को सेवक बना देता है।

(23)

बेलों वरण चुरावही, मारीजे घड़्याल।
तो रज्जब सुण देखतों, तजो कुसंगति काल॥

भावार्थ – नदी के पाट में के खेत की बेलों को तो जल उखाड़ कर चुरा ले जाता है और उसके बदले में जलप्रवाह के साथ खेत में आया हुआ ग्राह मारा जाता है, इसे विचार कर कुसंग को सुन कर वा देखते ही छोड़ देना चाहिये, कुसंगति काल रूप है।

(24)

लंकापति सीता हरै, बाँधीजे सु उदद्धि।
तो कुसंग किन त्यागिये, सुन महिमा सु प्रसिद्धि॥

भावार्थ – सीता को तो लंकापति रावण ने हरा था किन्तु रावण के संग से समुद्र के शिर पर भी सेतु बाँधा गया तब कुसंग की ऐसी प्रसिद्ध महिमा सुनकर भी कुसंग को क्यों नहीं त्यागते ?

(25)

रज्जब रहे कुसंग में, कुमति उदय ह्वै आय।
ज्यों सुरापान के कुंभ में, खीर ख्वार ह्वै जाय ॥

भावार्थ – जैसे मदिरा-पान के घड़े में क्षीर (दूध) वा दूध-चाँवल से बनी हुई खीर खराब हो जाती है, वैसे ही कुसंग से सुमति नष्ट होकर कुमति जन्म जाती है।

(26)

रज्जब नाणा गांठि का, खोटा चले न हाटि।
ता सौं मोह न कीजिये, डारि देहु किन काटि ॥

भावार्थ – अपनी गाँठ का सिक्का हाट पर नहीं चलता तब वह खोटा है, उससे मोह न करो, उसे काट कर पटक क्यों नहीं देते ? वैसे ही बुरे मनुष्य से मोह न करके उसे त्याग ही देना चाहिये।

(27)

पर दारारत पारधी, जूवारी अरु चोर।
मद्य माँस वेश्यागमन, सातों नरक अघोर ॥

भावार्थ – परनारी में अनुरक्त, व्याध, जुआरी, चोर, मद्य पीने वाला, मांस भक्षण करने वाला, वेश्या-सेवन करने वाला, ये सातों ही अघोर (अति घोर) नरक में जाते हैं।

(28)

रज्जब काचे काठ को, देखो कीड़े खाँहिं।
पाके में पैठे नहीं, वक्त्रसु वेधै नाँहिं ॥

भावार्थ – कच्चे काष्ठ को ही कीड़े खाते हैं, पक्के में प्रवेश नहीं कर पाते। वैसे ही कच्चे विचारों के मानव पर ही कुसंग का प्रभाव पड़ता है, पक्के विचारों के मानव के हृदय को कुमानव के वक्त्र (मुख) के वचन विद्ध नहीं कर सकते।

(29)

मुख मीठे जल मुकुर जिमि, पै ज्वालामय अंग।
रज्जब कदे न कीजिये, तिन कपट्यों का संग॥

भावार्थ – कपटी मनुष्य मुख से तो आतशी शीशे के पानी के समान प्यारे लगते हैं किन्तु जैसे आतशी शीशे के भीतर अग्नि होती है, वैसे ही उनके शरीर में भी अग्नि ज्वाला रूप ही होता है। अतः उन कपटी जनों का संग कभी भी नहीं करना चाहिये।

(30)

नींद न आवहि ठौर तिहुँ, विषय बंदगी वैर।
ज्ञानी देखो ज्ञान करि, रज्जब कही न गैर॥

भावार्थ – विषय, बंदगी (भक्ति) और वैर इन तीन स्थितियों में निद्रा नहीं आती है। हे ज्ञानीजनो ! बुद्धि द्वारा विचार करके देख सकते हो, मैंने यह ठीक ही बात कही है, गैर (व्यर्थ) वा विरुद्ध अर्थ देने वाली नहीं कही है।

(31)

बालै बूढे एक गति, प्रत्यक्ष देखो जोय।
दूज अमावस के निकट, शशि शिशु रूपी होय॥

भावार्थ – बालक और बूढ़े की चेष्टा एक-सी ही होती है। उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अमावस्या के निकट की दूज को चन्द्रमा बालक (बाल चन्द्र) होता है और चतुर्दशी को बूढ़ा होता है किन्तु दोनों ही दिन की प्रकाशादि चेष्टा समान होती हैं।

❖❖❖

सुन्दरदास

इन्दव छन्द

(1)

भूलि गयौ हरि नाँम कौ तूँ सठ, देखि धौं कौन संयोग बन्यौ है।
काल अचानक आइ गहै कंठ, पेखि धौं झूठौ सौ तानौ तन्यौ है ॥
छार करै सब चाँम कौं लूटै, आदि कौ अैसैं हि जीव हन्यौ है।
कोउ न होत सहाइ कौं कूटै, अनादि कौ सुन्दर यासौं सन्यौ है ॥

भावार्थ – रे शठ ! तू हरिस्मरण करना तो भूल ही गया – यह कैसा कुसंयोग बन गया। अब तुझे यह भी ध्यान नहीं आ रहा है कि कब अचानक आ कर मृत्यु तेरा गला पकड़ लेगी। यह (मृत्यु) क्षण भर में ही तेरे इस शरीर को नष्ट कर राख का ढेर बना देगी। मृत्यु का यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इस मृत्यु से तेरी रक्षा करने में तेरा परमस्नेही कुटुम्ब भी तेरी कोई सहायता न कर सकेगा। सुन्दरदास कहते हैं कि हम अनादि काल से सन्तों से ऐसा ही सुनते आ रहे हैं।

दुर्मिल छन्द

(2)

कन ही कन कौं बिललात फिरै, सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तन ही तन कौं अति सोच करै, नर खात रहै अन ही अन कौं ॥
मन ही मन की तृषणा न मिटी, पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी, कबहूँ न गयौ बन ही बन कौं ॥

भावार्थ – रे मूर्ख ! तू अन्न के एक-एक दाने के लिये बिलखता फिरता है, इसके लिये प्रत्येक पुरुष के सामने हाथ पसारता है। तेरा केवल अपने शरीर की रक्षा एवं वृद्धि पर ही ध्यान है, इसी के लिये रे नर ! तू अन्न खाता रहता है। फिर भी तेरे मन की तृष्णा नहीं मिटी और इसकी निवृत्ति हेतु तू धनोपार्जन के लिये दौड़ता रहता है। सुन्दररदास कहते हैं कि इस प्रकार तेरी क्षण-क्षण आयु घटती जा रही है, फिर भी तू हरिभजन हेतु वन (एकान्त) में कभी नहीं गया।

इन्दव छन्द

(3)

घात अनेक रहैं उर अंतरि, दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्र हि ज्यौं नित, ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥
ऊपर तैं छिरकै जल आँनि सु हेठ लगावत जारि अंगीठी।
या महिं कूर कछू मति जानहुँ, सुन्दर आपुनि आंखिनि दीठी॥

भावार्थ – दुष्ट व्यक्ति दूसरे के लिये हानि (घात) करने का विचार अपने मन में छिपाये रहता है, परन्तु उसके सामने उसकी प्रशंसा में लगा रहता है। वह उसके सामने उसकी अनुशंसा (खुशामद) में लौट-पोट होता रहता है परन्तु वह उसकी हत्या के लिये व्याघ्र की तरह उसकी पीठ को लक्ष्य बनाये रखता है। ऊपर से वह जल छिड़ककर अग्नि बुझाने का अभिनय करता है, परन्तु नीचे-नीचे अंगीठी के सहारे अग्नि जलाये रखता है। सुन्दरदास कहते हैं कि दुष्ट की क्रूरता में कोई कमी नहीं है, यह सब हमने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख रखा है।

(4)

ज्यौं नर पोषत है निज देह हि, अन्न बिनाश करै तिंहि वारा।
ज्यौं अहि और मनुष्य हि काटत, वाहि कछू नहिं होइ अहारा॥
ज्यौं पुनि पावक जारि सबै कछु, आपुहु नाश भयौ निरधारा।
त्यौं यह सुन्दर दुष्ट सुभावहि, जानि तजौ किन तीन प्रकारा॥

भावार्थ – दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव से परिचित होने के लिये पहले तीन बातें जान लेनी चाहिये; जैसे – (i) मनुष्य अपने देह के पालन-पोषण और जिह्वा-स्वाद के लिये मांसाहार कर दूसरे का जीवन नष्ट करता है। (ii) जैसे साँप किसी को काटता है तो उससे उस (सर्प) को कोई खाद्य नहीं मिल जाता कि उसका पेट भर जाय। (iii) जैसे अग्नि किसी का घर जला कर, अन्त में निराश्रय होकर स्वयं भी बुझ जाती है। सुन्दरदास कहते हैं कि दुष्ट के स्वभाव की ये तीन बातें जानकर भी किसने इन तीन बातों को छोड़ दिया है!

(5)

सर्प डसै सु नहीं कछु तालक, वीछु लगै सु भलौ करि मांनौ।
सिंह हु खाइ तौ नाँहि कछू डर, जौ गज मारत तौ नहिं हांनौ॥
आगि जरौ, जल बूड़ि मरौ, गिरि जाइ गिरौ, कछु भै मति आंनौ।
सुन्दर और भले सब ही दुख, दुर्जन संग भलौ जनि जांनौ॥

भावार्थ – किसी को साँप डँस ले, कोई चिन्ता की बात नहीं। किसी को बिच्छू काट ले, उससे भी कोई भला होगा – ऐसा मान लो। सिंह खा डाले, उसका भी कोई भय नहीं। हाथी अपने पैरों से कुचल दें, तो भी कोई हानि नहीं। कोई अग्नि में जल जाय, या जल में डूब मरे, पहाड़ से गिर पड़े तो भी कोई भय नहीं मानना चाहिये। सुन्दरदास कहते हैं कि परमात्मा, भले ही अन्य कोई भी बड़े से बड़ा संकट (दुःख) हम को दे, उसे हम सहन कर लेंगे; परन्तु किसी दुष्ट का संग हमें कभी न मिले – इसी में हमारा हित है।

मनहर छन्द

(6)

एक बाँणी रूपवंत भूषन बसन अंग,
अधिक बिराजमान कहियत ऐसी है।
एक बाँणी फाटे टूटे अम्बर उढ़ाये आंनि,
ताहू माँहि बिपरीत सुनियत तैसी है॥
एक बाँणी मृतक ही बहुत सिंगार किये,
लोकनि कौ नीकी लगै संतनि कौं भै सी है।
सुन्दर कहत बाँणी त्रिबिध जगत माँहि,
जानै कोऊ चतुर प्रबीन जाकै जैसी है॥

भावार्थ – एक वाणी (वचन) ऐसी होती है जैसे कोई रूपवती, सुवर्णाभूषणों से भूषित तथा महार्घ वस्त्रों से आच्छन्न हो। तथा एक वाणी ऐसी होती है कोई मानों फटे, पुराने, मलिन वस्त्रों से आच्छन्न हो। तथा एक वाणी ऐसी होती है, जैसे किसी मृतक को विविध शृंगार कर बैठा दिया गया हो। ये तीनों ही वाणियाँ साधारणजनों के लिये कितनी ही मनोमुग्धकारी क्यों न हों, सन्तजनों के लिये तो वह भयदायिनी हैं (कि इसे सुनकर पुनः जगत्प्रपंच में न फँस जायँ)। सुन्दरदास कहते हैं कि इस तरह जगत् में ये तीन प्रकार की वाणी (त्रिविध वाणी) मानी गयी हैं। कोई चतुर प्रवीण मनुष्य ही इन तीनों को, पृथक्-पृथक् भेद कर के, जान सकता है।

(7)

बोलिये तौ तब जब, बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौंन गहि, चुप होइ रहिये।
जोरिये ऊ तब जब, जोरिबो ऊ जाँनि परै,
तुक छंद अरथ, अनूप जामैं लहिये॥
गाइये ऊ तब जब, गाइबे कौं कंठ होइ,
श्रवन के सुनत हो मन जाइ गहिये।

तुकभंग छंदभंग, अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत ऐसी, बाँनी नहीं कहिये ॥

भावार्थ – लोक में बुद्धिमान् पुरुष को तभी बोलने का प्रयास करना चाहिये, जब उन विषयों में वह कुछ बोलना जानता हो अन्यथा मौन धारण कर चुपचाप बैठे रहना चाहिये । किसी काव्य-रचना का भी तभी प्रयास करना चाहिये जब उस कविता के तुक, छन्द एवं अनुपम अर्थ के विषय में पहले भली-भाँति जान लिया गया हो । किसी सभा में गायन का भी तभी प्रयास करना चाहिये जब उसके पास कण्ठ (सुस्वर) हो, जो श्रोता को, सुनने के साथ ही, मुग्ध कर ले । सुन्दरदास कहते हैं कि ऐसी वाणी (कविता) नहीं बोलनी चाहिये जिसमें तुकभंग हो, या छन्दभंग हो तथा उसका कोई हितकारी अर्थ भी न निकलता हो ।

(8)

एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत हैं अधिक मनभाँवने ।
एकनि के बचन अशम मानौ बरषत,
श्रवन के सुनत लगत अलखाँवने ॥
एकनि के बचन कंटक कटु बिष रूप,
करत मरम छेद दुख उपजाँवने ।
सुन्दर कहत घट घट मैं बचन भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनाँवने ॥

भावार्थ – एक पुरुष द्वारा बोले हुए वचन ऐसे होते हैं कि मानो उसके मुख से फूल झर रहे हों, उनके श्रवणमात्र से हृदय अत्यधिक आह्लादित हो उठता है । दूसरे किसी पुरुष द्वारा बोले हुए वचन ऐसे होते हैं मानों वह सुनने वाले पर अश्म (पत्थर) फेंक रहा हो, उसके सुनते ही उनको सुनने के प्रति उपेक्षा होने लगती है । फिर किसी तीसरे पुरुष के वचन ऐसे होते हैं जो सुनने में कटु, हृदयस्थल को बींधने वाले तथा परिणाम में विष के समान फलप्रदायी होते हैं, जो सुनते ही मर्मच्छेद करने वाले तथा दुःखदायी होते हैं । सुन्दरदास कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के बोलने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं, जो उपर्युक्त रीति से उत्तम, मध्यम एवं अधम – यों तीन प्रकार से कहे जा सकते हैं ।

(9)

काक अरु रासभ ऊलूक जब बोलत हैं,
तिनके तौ बचन सुहात कहि कौंन कौं ।
कोकिला ऊ सारौ पुनि सूवा जब बोलत हैं,
सब कोऊ काँन दे सुनत रव रौंन कौं ॥

ताहि तैं सुबचन बिवेक करि बोलियत,
यौंहि आँक बाँक बकि तौरिये न पौन कौं।
सुन्दर समुझि कै बचन कौं उचार करि,
नाँहि तर चुप ह्वै पकरि बैठि मौंन कौं॥

भावार्थ – कौआ, गधा और उल्लू – बोलने को तो ये तीनों भी बोलते हैं। परन्तु इनका बोला हुआ स्वर किसको अच्छा लगता है ! परन्तु कोयल, मैना और तोता भी बोलते हैं, उनका बोला हुआ सभी सुनने वालों को उतना प्रिय लगता है कि प्रत्येक सुनने वाला यथास्थान खड़े होकर सुनने लगता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह जो कुछ भी बोले विचारपूर्वक ही बोले; क्योंकि निरर्थक बोलकर अपने श्वासों को नष्ट करने का कोई लाभ नहीं है। सुन्दरदास कहते हैं कि इसलिये कुछ भी बोलना विचारपूर्वक ही होना चाहिये, अन्यथा मौन होकर चुप बैठे रहना ही अच्छा है।

(10)

प्रथम हिये बिचारि, ढ़ीम सौ न दीजै डारि,
ताहि तैं सुबचन सँभारि करि बोलिये।
जाने न कुहेत हेत भावै वैसी कहि देत,
कहिये तौ तब जब मन माँहि तौलिये॥
सबही कौं लागै दुख कोऊ नहिं पावै सुख,
बोलिकैं बृथा ही नातें छाती नहीं छोलिये।
सुन्दर समुझि करि कहिये सरस बात,
तब ही तौ बदन कपाट गहि खोलिये॥

भावार्थ – जो कुछ भी बोलना है उस पर पहले हृदय में विचार कर लें। ऐसा न हो कि आप बिना विचारे बोलकर किसी को ढेला मार दें। अतः पहले हृदय में विचार कर फिर सुवचन ही बोलना चाहिये। जो किसी का हित या अहित न देखकर जैसा चाहे वैसा बोल दे, उससे क्या लाभ होगा ! उचित तो यह है कि मन में विचार करके ही कुछ बोलना चाहिये। क्योंकि बिना बिचारे बोला हुआ सभी के हृदय में कष्टप्रद हो जाता है, किसी को भी प्रिय नहीं लगता। उसे सुनाकर दूसरों को दुःख देने का क्या लाभ ! अतः सोच-समझकर सरस (कर्णमधुर) शब्द ही बोलना चाहिये। ऐसा बोलना चाहने पर ही अपना मुख-द्वार खोलना चाहिये – इसी में सबका हित है।

(11)

जैसें हंस नीर कौ तजत है असार जाँनि,
सार जाँनि क्षीर कौं निरालौ करि पीजिये।

जैसें दधि मथत मथत काढ़ि लेत घृत,
और रही पही सब छाछि छाड़ि दीजिये ॥
जैसैं मधु मक्षिका, सुबास कौं भ्रमर लेत,
तैसैं ही बिचारि करि भिन्न भिन्न कीजिये ।
सुन्दर कहत तातैं बचन अनेक भाँति,
बचन मैं बचन बिवेक करि लीजिये ॥

भावार्थ – जैसे हंस जल को निःसार (तुच्छ) समझ कर उसे त्याग देता है। वह उसे पृथक् कर दूध को ही पीता है; क्योंकि उसकी दृष्टि में वह दूध ही सार है। जैसे कोई बुद्धिमान् पुरुष दही को मथते-मथते उसमें से घी को पृथक् कर लेता है तथा उसका निःसार तत्त्व (छाछ) त्याग देता है। जैसे मधुमक्षिका फूल के मकरन्द (रस) को तथा भ्रमर केवल उसकी गन्ध को ही ग्रहण करता है। सुन्दरदास कहते हैं कि यद्यपि उपर्युक्त विवेचन से जगत् में नाना प्रकार के वचन होते हैं; परन्तु उनमें से विवेकपूर्वक हितकारी वचन ही बोलने के लिये उपयुक्त समझने चाहिये।

(12)

बचन तैं द्रुरि मिलै बचन बिरुद्ध होइ,
बचन तैं राग बढ़ै, बचन तैं दोष जू।
बचन तैं ज्वाला उठै, बचन शीतल होइ,
बचन तैं मुदित, बचन ही तैं रोष जू॥
बचन तैं प्यारौ लगै, बचन तैं दूरि भगै,
बचन तैं मुरझाइ बचन तैं पोष जू।
सुन्दर कहत यह बचन कौ भेद ऐसौ,
बचन तैं बंध होइ, बचन तै मोक्ष जू॥

भावार्थ – बोला हुआ एक वचन ऐसा होता है जिसके प्रभाव से दूरदेशवासी दो अपरिचित भी मित्र बन जाते हैं; तथा एक वचन ऐसा होता है कि उसे सुन कर मित्र भी शत्रु बन जाता है। वचन के प्रभाव से ही राग या द्वेष में वृद्धि होती है। वचन के प्रभाव से ही व्यवहार में शीतलता एवं उष्णता बढ़ती है। वचन का प्रभाव ही हर्ष एवं क्रोध उत्पन्न कर देता है। वचन के प्रभाव से ही मनुष्य दूसरों का प्रिय हो जाता है, या उसे दूसरों द्वारा त्याग दिया जाता है। कोई वचन सुनकर मनुष्य में उदासी छा जाती है या किसी वचन से उसमें हर्षातिरेक हो जाता है। सुन्दरदास कहते हैं कि यह वचन का ही ऐसा प्रभाव है कि कोई किसी वचन से जगत्प्रपंच में बँध जाता है तथा कोई किसी वचन से मुक्त हो जाता है।

(13)

बचन तैं जोग करै, बचन तैं जज्ञ करै,
बचन तैं तप करि, देह कौ दहतु है।
बचन तैं बंधन, करत है अनेक बिधि,
बचन तैं त्याग करि, बन मैं रहतु है॥
बचन तैं उरझि रु, सुरझै बचन ही तैं,
बचन तैं भाँति भाँति, संकट सहतु है।
बचन तैं जीव भयौ, बचन तैं ब्रह्म होइ,
सुन्दर बचन भेद बेद यौं कहतु है॥

भावार्थ – वचनों की प्रामाणिकता मानकर ही साधक अपने को योग, यज्ञ, तप आदि क्लेश-कर्मों में संलग्न करता है। वचनों के प्रभाव से ही वह अपने को विविध बन्धनों में बाँध लेता है। इनके प्रभाव से ही वह गृहत्याग कर वनवासी बन जाता है। वचनों के प्रभाव से ही यह वासनाओं (जगज्जाल) में फँसता भी है, तथा उन वासनाओं से मुक्त भी हो सकता है। उन्हीं वचनों के कारण यह अपने लिये विविध संकट उत्पन्न कर लेता है। वचनों के मानने से ही यह जीव बना तथा उन ही के प्रभाव से ही यह कभी ब्रह्म से अपनी एकता कर सकता है। सुन्दरदास कहते हैं कि यह केवल वचनभेद मानने पर ही सब कुछ हो रहा है – ऐसा वेद (शास्त्री) कहते हैं।

इन्दव छन्द

(14)

पाँन उहै जु पीयूष पिवै नित, दाँन उहै जु दरिद्र ही भाँनै।
काँन उहै सुनिये जश केशव, माँन उहै करिये सनमाँनै॥
ताँन उहै सुलताँन रिझावत, जाँन उहै जगदीश ही जाँनै।
बाँन उहै मन बेधत सुन्दर, ज्ञाँन उहै उपजै न अज्ञाँनै॥

भावार्थ – वास्तविक ‘पान’ (पीना) वही है, जिसमें अमृतरस पीया जाय। इसी तरह ‘दान’ वही है जिससे दरिद्रता विनष्ट हो सके। तथा उसी को वास्तविक ‘कर्णेन्द्रिय’ (कान) कहा जा सकता है, जिसमें प्रभु परमात्मा का निरन्तर गुणगान सुनाजाय। एवं ‘मान’ उसे ही कहते हैं जो दूसरों को भी आदृत (सम्मानित) करना जाने ! ‘तान’ (संगीत) उसे ही माना जाता है जो राजा (कुशल संगीतज्ञ) को भी मुग्ध कर सके। इसी तरह ‘ज्ञान’ वही कहा जाता है, जिसके माध्यम से प्रभु परमात्मा का साक्षात्कार हो सके। इसी प्रकार ‘बाण’ उसे ही कहेंगे जिससे प्रत्यक्षत: (सीधे) हृदय पर प्रहार हो। और सुन्दरदास ‘ज्ञान’ उसे कहते हैं जिसकी प्राप्ति के बाद अज्ञान का आवरण सदा के लिये सर्वथा निवृत्त हो जाय।

(15)

प्रीति प्रचंड लगै परब्रह्म हि, और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध हृदै मति होइ सु निर्मल, द्वैत प्रभाव मिटै सब जी कौ॥
गोष्ठ रु ज्ञाँन अनंत चलै तहँ, सुन्दर जैसैं प्रवाह नदी कौ।
ताहि तैं जानि करौ निसवासर, साधु कौ संग सदा अति नीकौ॥

भावार्थ – जिसका स्नेह (प्रीति) परब्रह्म परमात्मा में एकान्ततः ऐसे लगा हुआ है कि उसके सम्मुख जगत् में अन्य सभी व्यवहार उसको फीके (नीरस) लगते हैं। जिसका हृदय कामादि विकारों से रहित होने के कारण शुद्ध हो चुका है, जिसकी बुद्धि निर्मल (निर्दोष) हो चुकी है, जिसके कारण उसका मनःस्थित समस्त द्वैत (भेद) भाव निवृत्त हो चुका है। जिसके आवास पर ज्ञानगोष्ठियाँ नदी-प्रवाह की तरह निरन्तर चलती रहती हैं। सुन्दरदास साधारणजन को परामर्श देते हैं कि अतः यह जानकर, मानवमात्र को दिन-रात ऐसे सन्त का संग करना चाहिये; क्योंकि उसका फल सदैव भव्य ही होता है।

(16)

ज्यौं लट भृंग करै अपनै सम, तासनि भिन्न कहै नहिं कोई।
ज्यौं द्रुम और अनेक हि भाँतिनि, चंदन के ढिग चंदन होई॥
ज्यौं जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि, होत पवित्र उहै जल सोई।
सुन्दर जाति सुभाव मिटै सब, साधु कै संग तैं साधु ही होई॥

भावार्थ – जैसे कोई भौंरा (भृंग) किसी कीटविशेष (लट) को नाद सुना कर अपने समान बना लेता है, तब कोई भी उसे देखकर भृंग के अतिरिक्त कीट नहीं कह पाता। जैसे चन्दन वृक्ष के पास उत्पन्न सभी वृक्ष समय पाकर चन्दन (की गन्ध वाले) ही बन जाते हैं, उनको चन्दन से भिन्न कोई नहीं कह पाता। जैसे क्षुद्र (मैली) नदी का मलिन जल गंगा में मिलकर पवित्र गंगाजल कहलाताहै। सुन्दरदास का (इन तीन उदाहरणों के माध्यम से) मानना है कि साधु की संगति में आने पर उस जिज्ञासु का भी पूर्व जातिस्वभाव विनष्ट हो जाता है और वह साधु के संग से साधु ही हो जाता है।

(17)

तात मिलै पुनि मात मिलै, सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज बाज मिलै, सब साज मिलै मन वांछित पाई॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै, बिधिलोक मिलै बैकुण्ठ हि जाई।
सुन्दर और मिलै सब ही सुख, दुर्लभ संत समागम भाई॥

भावार्थ – संसार में किसी प्राणी को संसार में अच्छे से अच्छा पिता मिल सकता है, माता मिल सकती है, पुनः भाई, स्त्री – सब कुछ मिल सकता है। उसको कभी राज्य भी मिल सकता है; हाथी, घोड़े, धन, सम्पत्ति भी मिल सकती है, यहाँ तक कि सभी कुछ मनोवांछित भोग्य पदार्थ भी मिल सकते हैं। उसका इस लोक में भी जन्म हो सकता है, देवलोक में भी जन्म हो सकता है, उसको ब्रह्मलोक भी उपलब्ध हो सकता है। सुन्दरदास का कथन है कि संसार में अन्य सभी सुख कभी न कभी उपलब्ध होने सम्भव हैं; परन्तु, भाई ! सच्चे सन्त का मिलना अत्यधिक कठिन है।

मनहर छन्द

(18)

देखै तौ बिचार करि सुनै तौ बिचार करि,
बोलै तौ बिचार करि करै तौ बिचार है।
खाइ तौ बिचार करि पीवै तौ बिचार करि,
सोवै तौ बिचार करि तौ ही तौ ऊबार है॥
बैठै तौ बिचार करि उठै तौ बिचार करि,
चलै तौ बिचार करि सोई मत सार है॥
देइ तौ बिचार करि लेइ तौ बिचार करि,
सुन्दर बिचार करि याही निरधार है॥

भावार्थ – इस व्यावहारिक जगत् में लोकव्यवहार करते समय साधक को देखना, सुनना और बोलना – ये तीनों ही बातें विचारपूर्वक करनी चाहिये। खाना, पीना तथा सोना भी विचारपूर्वक करना चाहिये। तभी इस जगत् से उसका उद्धार हो सकता है। इसी तरह बैठना, उठना, चलना – यह सब भी विचारपूर्वक करना चाहिये। इसी में साधक का हित है। सुन्दरदास कहते हैं कि साधक को यहाँ देना, लेना आदि व्यवहार भी विचारपूर्वक करना है। यदि उसे इस जगत् से छुटकारा पाना है तो उसे 'विचारपूर्वक कार्य करना है' – यह निश्चय कर लेना है।

इन्दव छन्द

(19)

जाकै हृदै महिं ज्ञान प्रकासत, ताकौ सुभाव रहै नहिं छाँनौ।
नैंन मैं बैंन मैं सैंन मैं जानिये, ऊठत बैठत है अलसाँनौ।
ज्यौं कछु भक्ष किये उदगारत, कैसैं हुँ राखि सकै न अघाँनौ।
सुन्दरदास प्रसिद्धि दिखावत, धाँन कौ खेत पयार तैं जाँनौ॥

भावार्थ – जिसके हृदय में ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है उस ज्ञानी पुरुष का लोकव्यवहार छिपा नहीं रहता। उसकी आँखों में, वाणी में, शरीर के अन्य उठने-बैठने आदि हाव-भावों में संसार के प्रति उपेक्षा प्रकट होने लगती है। जैसे भोजन कर लेने के बाद कोई अपना तृप्तिसूचक उद्गार (डकार) किसी भी प्रकार रोक नहीं सकता, उसी तरह सुन्दरदास कहते हैं कि ज्ञानी का व्यवहार भी लोक में छिपा नहीं रहता। धान के खेत में उसके पुआल से ही पहचान में आ जाता है कि उसमें कैसा अन्न उपजेगा।

(20)

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत, जाति न पाँति नहीं कुलगारौ।
प्रेम कै नेम कहूँ नहिं दीसत, लाज न काँन लग्यौं सब खारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअन्तरि, आठहुँ जाँम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोऊ न जाँनि सकै यह, गोकुल गाँव कौ पैंडौ ही न्यारौ॥

भावार्थ – प्रभुभक्ति में संसार का कोई विधि-विधान प्रयुक्त नहीं हो पाता। न यहाँ जाति-पाँति की कोई पूछ है, न कुल-गोत्र द्वारा निन्दा की चिन्ता। यहाँ इस प्रतिबन्ध में प्रेम का भी कोई विधि-विधान नहीं दीखता। न यहाँ कोई सांसारिक लज्जा या संकोच है, न कोई मर्यादा। यह सब उस प्रभुभक्त को कटु लगता है। वह तो निरन्तर प्रभुभक्ति में लीन रहता है, आठों पहर उसी में उन्मत्त रहता है। सुन्दरदास कहते हैं कि इस प्रभुभक्ति की पद्धति को कोई साधारण पुरुष नहीं जान सकता, क्योंकि गोकुलग्राम (प्रभुभक्ति की ओर) जाने का मार्ग ही भिन्न है।

❖❖❖

तुलसीदास

दोहा

(1)

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोस कृमि कीस ॥

भावार्थ – अभिमान ही बन्धन का मूल है। 'हम बड़े हैं और हमारा आचार श्रेष्ठ है' – ऐसे अभिमान का भारी बोझ सिर पर रख कर मूर्ख लोग तोते, रेशम के कीड़े और बन्दर की तरह बलात्कार से पराधीन हो जाते हैं। तोता फिरने वाली लकड़ी पर बैठकर लकड़ी घूमते ही उलट जाता है और पंजों से लकड़ी को पकड़े रखकर अपने को बँधा मानता है और पकड़ा जाता है। रेशम का कीड़ा आप ही कोश बनाकर उसमें बँध जाता है और मारा जाता है। इसी प्रकार बन्दर छोटे मुँह की हँड़िया में चने के लोभ से हाथ डालकर चने मुट्ठी में भरकर मुट्ठी बन्द कर लेता है, चनों के लालच से मुट्ठी खोलता नहीं और फलस्वरूप पकड़ा जाता है।

(2)

दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ॥

भावार्थ – सन्तोषपूर्वक घर में रहना ही उत्तम है। सम्पत्ति शरीर की छाया के समान है। इसको पीठ देकर चलने से यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलने से दूर भाग जाती है। जो धन से मुँह मोड़ लेता है, धन की नदी उसके पीछे-पीछे बहती चली आती है; और जो धन के लिये सदा ललचाता रहता है उसे सपने में भी पैसा नहीं मिलता। इस बात को समझ कर धनोपार्जन में समय नष्ट मत करो। घर बैठकर ही दिन बिताओ अर्थात् सन्तोष से रहो और भगवान् का भजन करो।

(3)

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥

भावार्थ – धन और ऐश्वर्य के मद तथा काम की व्यापकता से कोई नहीं बच पाया। धन के मद ने किसको टेढ़ा नहीं कर दिया, प्रभुता ने किसको बहरा नहीं बना दिया और ऐसा कौन है, जिसको मृगलोचनी सुन्दर स्त्री के नयन-बाण नहीं लगे !

(4)

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

भावार्थ – काम, क्रोध और लोभ की प्रबलता से सावधान रहने की आवश्यकता है। हे तात ! काम, क्रोध और लोभ – ये तीन दुष्ट बड़े ही बलवान् हैं, ये ज्ञान-सम्पन्न मुनियों के मन में भी पल भर में ही क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं।

(5)

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥

भावार्थ – अग्नि किस वस्तु को नहीं जला सकती ? समुद्र में कौनसी वस्तु नहीं डूब सकती ? जगत् में काल किसको नहीं खाता ? और अबला कहलाने वाली स्त्री प्रबल होने पर क्या नहीं कर सकती ?

(6)

ग्रह ग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पियाइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥

भावार्थ – काम-क्रोधादि एक-एक होने पर ही अनर्थकारी हैं, फिर यदि सभी एक साथ उपस्थित हो जाएँ तो बात ही क्या ! जिसे कुग्रह लगे हों अथवा जो पिशाचग्रस्त हो, फिर जो वायु रोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे – ऐसे, तीन प्रकार से पागल बने हुए को ऊपर से शराब पिला दी जाय तो कहिए, यह कैसा इलाज है !

(7)

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मन लेहु॥

भावार्थ – आत्मसम्मान की रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतम से प्रेम का नित्य नवीन होना, बढ़ना – ये तीनों बातें तभी शोभा देती हैं जब चातक के मत का अनुसरण किया जाय।

(8)

साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥

भावार्थ – साधन में सभी कष्ट सहते हैं और फल की प्राप्ति सभी के लिए सुखदायिनी होती है; परन्तु चातक की-सी रीझ (प्रेम) और मेघ की-सी बुद्धि किसी बिरले ही बुद्धिमान् की होती है। चातक मेघ पर इतना रीझा रहता है कि कष्ट सहने पर भी उससे प्रेम बढ़ाता ही है और मेघ की ऐसी बुद्धि-गुणज्ञता है कि वह दाता होकर भी ऋणी बन जाता है।

(9)

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर॥

भावार्थ – कोयल, मोर और चकोर मुँह के तो मीठे होते हैं; परन्तु मन के बड़े मैले होते हैं। बोली तो बड़ी मीठी बोलते हैं पर कीट-सर्पादि जीवों को खा जाते हैं। परन्तु हे नवल चातक ! विश्व भर में निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है।

(10)

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि बिष खानि।
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि॥

भावार्थ – एकांगी अनुराग कष्टदायी है। जिसके दो जीभें हैं, काला शरीर और टेढ़ी चाल है तथा जो विष की खान है, ऐसा सर्प भी कानों से अपनी प्रशंसा सुनते ही प्रेमवश आकर अपना सिर सौंप देता है। ऐसी मान्यता है कि सँपेरा मन्त्र पढ़कर साँप की बड़ी प्रशंसा करता है और तुंगी बजाता है। प्रशंसा सुनकर सर्प प्रसन्न होकर तुरन्त दौड़कर उसके पास आ पहुँचता है और सँपेरे के द्वारा पकड़ा जाता है।

(11)

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ।
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ॥

भावार्थ – गाढ़े दिन का मित्र ही सच्चा मित्र है। सुख के दिनों में चाहे कोई मित्र या शत्रु कुछ भी क्यों न हो, कोई महत्त्व की बात नहीं है। सच्चा मित्र तो वही है जो बुरे (विपत्ति के) दिनों में प्रेम करता है।

सूर्य अपने घर में अमावस्या के दिन (अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं) चन्द्रमा की शोभा को हरण कर लेता है, फिर भी उसको सब 'मित्र' (सूर्य का एक नाम 'मित्र' भी है) ही कहते हैं क्योंकि वह विपत्ति में चन्द्रमा का हित करता है, अपनी किरणों से सदा उसे प्रकाश देता रहता है।

(12)

कै लघु कै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाबिष होइ॥

भावार्थ – बराबरी का स्नेह दुःखदायी होता है। मित्र अपने से या तो छोटा हो या बड़ा हो, तभी कल्याण है; बराबरी का प्रेम तो दुःखदायक ही होता है। जैसे घी और मधु बराबर परिमाण में मिल जाने से भयंकर विष हो जाता है।

(13)

मान्य मीत सों सुख चहैं सो न छुऐ छल छाहँ।
ससि त्रिसंकु कैकेइ गति लखि तुलसी मन माहँ॥

भावार्थ – मित्रता में छल बाधक है। जो कोई अपने सम्मान्य मित्र से सुख चाहता हो तो उसे चाहिये कि वह चन्द्रमा, त्रिशंकु और कैकेयी की गति को मन में विचार कर छल की छाया को भी न छुवै। अर्थात् किसी भी प्रकार से छल न करे। चन्द्रमा ने गुरुपत्नी-गमन किया, जिससे वह अब तक बदनाम है। चन्द्र को सभी कलंकी कहते हैं। त्रिशंकु को गुरु वशिष्ठ का अपमान करने के कारण पहले चाण्डाल होना पड़ा और पश्चात् विश्वामित्र के तपोबल से सदेह स्वर्ग जाते हुए वापस उलटे मुँह गिरना और लटकना पड़ा। कैकेयी ने अपने स्वामी दशरथ से छल करके तुरन्त ही वैधव्य और सदा के लिए अपयश अपने सिर ले लिया।

(14)

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि॥

भावार्थ – वैर और प्रेम दोनों, चारों आँखों से (अन्तर्दृष्टि एवं बाह्यदृष्टि दोनों से) अन्धे (रहित) होते हैं। वैरी अपने द्वेषी के गुणों को नहीं देखता और प्रेमी अपने प्रेमास्पद के दोष नहीं देखता, और न इनको उचित-अनुचित का ज्ञान होता है। जैसे सेवड़ा (वाममार्गी साधक) शराब का अत्यन्त निन्दनीय और त्याज्य होने पर भी आदर करते हैं और पवित्र गंगाजल की निन्दा करते हैं।

(15)

हित पुनीत सब स्वारथहिं अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़॥

भावार्थ – स्वार्थ ही अच्छाई-बुराई का मानदण्ड है। जब तक स्वार्थ है, तब तक सभी वस्तुएँ पवित्र और हितकारी जान पड़ती हैं; बिना चाह की वही चीजें जो स्वार्थ के समय पवित्र और हितकारी जान पड़ती थीं, अपवित्र और शत्रु के समान दिखायी देने लगती हैं। जैसे जब तक दाँत अपने मुँह में रहते हैं, तब तक वे माणिक के समान मूल्यवान् होते हैं; परन्तु वही टूटकर जब ज़मीन पर गिर पड़ते हैं, तब अस्पृश्य हाड़ कहलाते हैं।

(16)

माखी काक उलूक बक दादुर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोर से कोउ न प्रेम पथ जोग॥

भावार्थ – संसार में प्रेममार्ग के अधिकारी बिरले ही हैं। अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेढक के सदृश बिना ही कारण हानि करने वाले, परनिन्दारूपी मल भक्षण करने वाले, भगवान् की ओर से आँख मूँदे रखने वाले, ऊपर से सुन्दर वेष धारण कर अन्दर से छलने की इच्छा रखने वाले और व्यर्थ का बकवाद करने वाले हो गये हैं और जो कुछ भले लोग हैं, वे भी तोते, कोयल और मोर के सदृश देखने में अच्छे, पर पल में प्रेम तोड़कर भाग जाने वाले, बोलने में मधुर परन्तु स्वार्थी, शरीर से सुन्दर परन्तु कठोर हृदय हैं; प्रेम पथ पर चलने योग्य तो कोई भी नहीं है।

(17)

नीच निचाई नहिं तजइ सज्जनहू कें संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भए न भुअंग॥

भावार्थ – स्वभाव की प्रधानता बनी रहती है। सज्जन का संग होने पर भी नीच प्रकृति का मनुष्य अपनी नीचता को नहीं छोड़ता। चन्दन के वृक्षों में निवास करके भी साँप विषरहित नहीं हुए।

(18)

सुकृत न सुकृती परिहरइ कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच॥

भावार्थ – मूल स्वभाव कभी नहीं बदलता। पुण्यात्मा पुरुष अपने पुण्य को और नीच प्रवृत्ति वाले कपटी मनुष्य अपने कपट को मरते दम तक नहीं छोड़ते। जटायु और मारीच मरते-मरते इसी बात की सीख दे गये हैं। जटायु ने सीता के छुड़ाने के प्रयत्न में परोपकारार्थ प्राण छोड़े और मारीच ने मरते समय भी राम के-से स्वर में 'हा लक्ष्मण ! हा लक्ष्मण !' कहकर सीता को धोखा दिया।

(19)

सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान।
पर हित अनहित लागि सब साँसति सहज समान॥

भावार्थ – सज्जन पुरुष सुन्दर, लाभकारी कपास और ऊख के पौधे के समान हैं और दुर्जन टाँकी और रुखानी (बढ़इयों का लोहे का एक औजार) के समान। सज्जन और दुर्जन दोनों ही समान रूप से कष्ट सहते हैं; परन्तु सज्जन पराये हित के लिए कष्ट सहते हैं जबकि दुष्ट दूसरों के अहित के लिए।

(20)

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिएँ का लाख।
दुइज न चंदा देखिऐ उदौ कहा भरि पाख॥

भावार्थ – अवसर पर कार्य की प्रधानता होती है। आवश्यकता के समय मनुष्य यदि कौड़ी देने में भी चूक जाय तो फिर अनावश्यक, बिना मौके पर लाख रुपया देने से भी क्या होता है ? द्वितीया के चन्द्रमा को न देखा जाय तो फिर पक्ष भर चन्द्रमा उदय होता रहे, उससे देखने से क्या होगा !

(21)

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि॥

भावार्थ – प्रीति और बैर को तीन श्रेणी में विभक्त करके देखा जा सकता है। प्रीति और बैर की परीक्षा में उत्तम, मध्यम और नीच प्रवृत्ति वाले तीनों मनुष्यों की स्थिति क्रमशः पत्थर, बालू और जल के समान है। उत्तम प्रवृत्ति वाले मनुष्य की प्रीति पत्थर की लीक के समान अमिट है। मध्यम प्रवृत्ति वाले मनुष्य की प्रीति बालू की रेखा के समान – दूसरी हवा न लगने तक ही है। और, नीच प्रवृत्ति वाले मनुष्य की प्रीति तो जल की लकीर के समान है, जैसे अँगुली से जल में लकीर करते जाइए, साथ-ही-साथ वह मिटती चली जायगी, ऐसे ही नीच प्रवृत्ति वाले मनुष्य की प्रीति तत्काल नष्ट हो जाती है; परन्तु तीनों मनुष्यों के बैर की स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है।

उत्तम प्रवृत्ति वाले मनुष्य का बैर जल की लकीर के समान तत्काल नष्ट होने वाला, मध्यम प्रवृत्ति वाले मनुष्य का बैर बालू की रेखा के समान कुछ समय तक रहने वाला और नीच प्रवृत्ति वाले मनुष्य का बैर पत्थर की लकीर के सदृश चिर स्थायी होता है।

(22)

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु॥

भावार्थ – अपना आचरण किसको अच्छा नहीं लगता ! जो नित्य लहसुन खाता है, उसको लहसुन की दुर्गन्ध नहीं मालूम होती।

(23)

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ॥

भावार्थ – संग की बड़ी महिमा है। अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा और बुरी संगति से वही मनुष्य बुरा हो जाता है। हे लोगो ! देखो ! जो लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है वही तलवार और तीर में लगने से जीवों का प्राण घातक हो जाता है।

(24)

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो गया मगह के पास॥

भावार्थ – कुसंगति में निवास करके जो सज्जनता की आशा करता है, उसकी आशा निराशा मात्र है। मगध के पास बसने से पवित्र विष्णुपद तीर्थ का नाम भी 'गया' (गया-बीता) पड़ गया।

(25)

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग।

भावार्थ – ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र – ये सभी बुरा या अच्छा संग पाकर जगत् में बुरे या अच्छे पदार्थ बन जाते हैं। इस रहस्य को अच्छे लक्षण वाले बुद्धिमान् लोग ही जान पाते हैं।

(26)

होइ भले कें अनभलो होइ दानि कें सूम।
होइ कपूत सपूत कें ज्यौं पावक में धूम॥

भावार्थ – भले के साथ हमेशा भला ही हो, यह नियम नहीं है। जैसे पवित्र तेजोमय अग्नि से काला धुआँ निकलता है वैसे ही अनेक बार भले के बुरा, दानी के कंजूस और सुपूत के कुपूत उत्पन्न हो जाता है।

(27)

कै निदरहुँ कै आदरहुँ सिंघहि स्वान सिआर।
हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार॥

भावार्थ – सज्जन व्यक्ति यश-अपयश, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, जीवन-मरण में सदैव सम बने रह कर कर्त्तव्य कर्म में निरत रहते हैं। कुत्ते और सियार सिंह का चाहे निरादर करें, चाहे आदर करें, हाथी को पछाड़ने वाले सिंह को इससे कोई हर्ष या शोक नहीं होता। वह कुत्ते-सियारों की ओर ताकता ही नहीं।

(28)

सरल बक्र गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबित राहु॥

भावार्थ – जगत् में सब सीधों को ही तंग करते हैं। सीधी-टेढ़ी दोनों प्रकार की चाल चलने वाले मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि – इन पाँच ग्रहों में से तो किसी को राहु जल्दी आँख उठाकर देखता भी नहीं। परन्तु सीधी चाल वाले सूर्य और चन्द्रमा को समय पर वही राहु त्रास देता है। भाव यह कि टेढ़ों से सभी डरते हैं और सीधों को कष्ट देने को सभी तैयार रहते हैं।

(29)

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो सो हित सोषनहारु॥

भावार्थ – जोंक की चाल टेढ़ी होती है, परन्तु वह मन से सीधी होती है; क्योंकि वह हानिकारक रक्त को ही चूसती है। परन्तु दुष्टों को इससे विपरीत समझना चाहिये। वे बाहरी चाल-ढाल से तो बड़े ही

सीधे दीखते हैं, परन्तु मन के अत्यन्त कपटी होते हैं क्योंकि वे तो दूसरों के हित का ही शोषण (नाश) करने वाले होते हैं।

(30)

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह।
छुवत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिन्ह की छाँह॥

भावार्थ – कपटी व्यक्ति से सदा सावधान रहना चाहिये। जिनका हँसना, मिलना और बोलना बड़ा ही मधुर है, परन्तु जिनके मन में कड़ुए कारनामे (कपट भरे कर्म) भरे हुए हैं – उन नीच प्रवृत्ति वाले मनुष्यों की छाया को छूने में भी जो सकुचाता है वही बुद्धिमान् है। अर्थात् मन के कपटी और ऊपर से सज्जन बने हुए लोगों से सर्वथा अलग रहने में ही बुद्धिमानी है।

(31)

जूझे ते भल बूझिबो भली जीति तें हार।
डहकें तें डहकाइबो भलो जो करिअ बिचार॥

भावार्थ – यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि लड़ने की अपेक्षा आपस में समझौता कर लेना अच्छा है, जीत से हार अच्छी है और किसी को ठगने की अपेक्षा स्वयं ठगाना ज्यादा अच्छा है।

(32)

जो मधु मरै न मारिऐ माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ॥

भावार्थ – जो शहद से ही मर जाय उसे जहर देकर क्यों मारना ! परशुराम सारे जगत् को जीतकर भी रामचन्द्र की मधुमयी वाणी से हार गए और रामचन्द्र परशुराम के सामने अपनी हार मानकर भी जीत गए।

(33)

रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि॥

भावार्थ – क्रोध में आकर ज़ुबान नहीं खोलनी चाहिये, बल्कि इससे तो तलवार खींचना अधिक अच्छा है। कहावत है – "तलवार का घाव मिट जाता है, पर ज़ुबान का कभी नहीं मिटता।" विचार-विचार कर ऐसे वचन बोलने चाहिये, जो सुनने में मीठे हों और परिणाम में हितकारी हों।

(34)

सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साइँ हित दोउ।
तुलसी समयहिं सब बड़ो बूझत कहुँ कोउ कोउ॥

भावार्थ – समय पर किये गए कार्य का ही महत्त्व है। समय पर काम करने से ही सब बड़े होते हैं, इस रहस्य को कहीं कोई-कोई ही जानते हैं। हनुमान ने सीता का सन्देश लाने के लिए 'समुद्र को लाँघना' और लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करने के लिए 'द्रोण-पर्वत को लाना' – ये दोनों काम अपने स्वामी के हित के लिए ठीक समय पर ही किये थे। 'समुद्र लाँघना' और 'पहाड़ उठाना' हनुमान के लिये साधारण बात थी, परन्तु ठीक समय पर होने से ही इनकी इतनी महिमा हुई।

(35)

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक॥

भावार्थ – धीरज, धर्म, विवेक, सत्-साहित्य, साहस और सत्य का व्रत और अपने इष्ट (ईश्वर) के प्रति अडिग विश्वास – बुरे समय (विपत्तिकाल) के यही मित्र हैं।

(36)

सिष्य सखा सेवक सचिव सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिअ पुनि परिहरिअ पर मन रंजन पाँच॥

भावार्थ – यदि यह बात सुनने में आवे कि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मन्त्री और सुन्दरी स्त्री – ये पाँचों मुझे छोड़कर दूसरे के मन को प्रसन्न करने लगे हैं तो पहले तो इसकी जाँच करनी चाहिये और जाँच करने पर यदि बात सत्य निकले तो फिर इनका मोह त्याग देना चाहिये।

(37)

नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरें रंग रस निरस बिषाद बिकार॥

भावार्थ – नगर, स्त्री, भोजन, मन्त्री, सेवक, मित्र और घर – इन सात की सरसता (प्रेम) नष्ट होने से पहले ही इनका मोह त्याग देने में शोभा और आनन्द है। नीरस होने पर इनका मोह त्याग करने में तो शोक और अशान्ति ही होती है।

(38)

दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर जोग॥

भावार्थ – प्राण के समान प्यारे होने पर भी बहुत दिनों के रोगी, दरिद्र, कटु वचन बोलने वाले और लालची – ये चारों निरादर के योग्य हो जाते हैं।

(39)

पाही खेती लगन बट रिन कुब्याज मग खेत।
बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत॥

भावार्थ – पाही खेती (जिस गाँव में रहते हों उससे दूर जाकर दूसरे गाँव में खेती करना), राह चलते मनुष्य में आसक्ति, बहुत अधिक ब्याज की कर्ज़दारी, रास्ते पर का खेत और अपनी अपेक्षा बड़े से वैर – ये पाँचों काम करने से अवश्य ही दु:ख के कारण होते हैं।

सोरठा

(40)

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥

भावार्थ – मूर्ख व्यक्ति उपदेश नहीं ग्रहण करता। यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिल जायँ तो भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

दोहा

(41)

कूप खनत मंदिर जरत आएँ धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिरकुमति सिरोमनि कूर॥

भावार्थ – जो लोग घर जलने पर कुआँ खोदते हैं, शत्रु के चढ़ आने पर किले की रक्षा के लिये चारों ओर बबूल के वृक्ष रोपना शुरू करते हैं और स्वार्थ-साधन के लिये भगवान् को छोड़कर जहाँ-तहाँ सिर नवाते फिरते हैं, वे मूर्खों के शिरोमणि और निकम्मे (दीर्घसूत्री और प्रमादी) हैं।

(42)

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।
सुधा सदन बसु बारहें चउथें चउथिउ चंद॥

भावार्थ – बुरा समय आने पर भले अधिकारियों को भी अपने प्रति बुरा फलप्रदायी ही समझिए। चन्द्रमा अमृत का भण्डार होने पर भी आठवें, बारहवें और चौथे स्थान में पड़ने पर एवं भादों सुदी चौथ के दिन देखने पर हानिकारक हो जाता है।

(43)

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥

भावार्थ – भरत अपनी कठोरता का विवेचन करते हुए कहते हैं कि मैं जो इतना कठोर हूँ, इसमें मेरा दोष नहीं हैं; क्योंकि कार्य कारण से अधिक कठोर होता ही है जैसे दधीचि की हड्डी से बना हुआ वज्र हड्डी से अधिक कठोर और पत्थर से उत्पन्न लोहा पत्थर से भी अधिक भयानक और कठोर होता है।

(44)

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

भावार्थ – प्रधान (राजा) को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने के लिये तो एक ही है; परन्तु विवेक के साथ समस्त अंगों का पालन-पोषण करता है।

(45)

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥

भावार्थ – सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान होने चाहिये और मालिक मुख के समान होना चाहिये। सेवक-स्वामी की प्रीति की रीति को सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं। अर्थात् जैसे हाथ,

पैर, आँख आदि खाद्य सामग्रियों के संग्रह में और विपत्ति पड़ने पर रक्षा करने में सहायता करते हैं, उसी प्रकार सेवक को मालिक की सहायता करनी चाहिये। और जैसे मुख सब पदार्थों को खाता है, परन्तु खाकर सब अंगों को यथायोग्य रस पहुँचाता है और उन्हें पुष्ट करता है, उसी प्रकार मालिक को सबका पेट भरकर उन्हें शक्तिमान् बनाना चाहिये।

(46)

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

भावार्थ – यदि मन्त्री, वैद्य और गुरु अप्रसन्नता के भय से या स्वार्थ साधन की आशा से हित की बात न कहकर 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने लगते हैं तो राज्य, धर्म और शरीर – इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

(47)

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बावन कर दण्ड।
श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रह्मण्ड॥

भावार्थ – बड़े के अपनाने से भी मनुष्य बड़ा हो जाता है, जैसे वामन भगवान् के हाथ का दण्ड उनके साथ ही बढ़कर अखिल ब्रह्माण्ड तक पहुँच गया।

❖❖❖

रहीम

दोहा

(1)

अब रहीम चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर।
जब दिन नीके आइ हैं बनत न लगि है देर॥

भावार्थ – प्रतिकूल समय में धैर्यपूर्वक शान्त रहकर अनुकूल समय आने की प्रतीक्षा करनी चाहिये क्योंकि जब अच्छे दिन आएँगे तो बिगड़े काम बनने में देर नहीं लगेगी।

(2)

उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार॥

भावार्थ – विषधर सर्प, ख़राब नस्ल का घोड़ा, परपुरुषगामिनी स्त्री, चौपट्ट राजा, घृणित कर्म करने वाले समुदाय के व्यक्ति और हथियार के साथ सदैव सँभल कर सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिये क्योंकि थोड़ी-सी भी चूक होने पर इन्हें पलटते देर नहीं लगती।

(3)

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन॥

भावार्थ – स्वाति नक्षत्र का पानी तो एक समान ही होता है लेकिन तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने तीन विभिन्न गुण प्रकट करता है। केले के पत्ते पर गिरने से स्वाति नक्षत्र का जल कपूर बनता है, वही सीपी के मुख में गिरने से मोती बनता है जबकि सर्प के मुख में पड़ने से वही स्वाति नक्षत्र का जल विष बन जाता है। जैसी संगति में बैठा जाता है वैसा ही फल मिलता है।

(4)

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥

भावार्थ – धन कहीं भी स्थायी रूप से नहीं रुकता। वह कभी किसी के पास रहता है तो कभी किसी अन्य के पास। आखिर ऐसा क्यों न हो ! धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी (कमला) विष्णु की पत्नी हैं। विष्णु

पुरातन पुरुष (वयोवृद्ध) हैं जबकि लक्ष्मी का आगमन बहुत बाद में हुआ। वे अवस्था में विष्णु से बहुत छोटी हैं। पति के वृद्ध होने से युवा पत्नी का चंचल होना स्वाभाविक है। संभवतया इसी से वृद्ध विष्णु की युवा पत्नी लक्ष्मी भी चंचल स्वभाव की हैं इसीलिए अस्थिरता उनका स्वभाव हो गया है।

(5)

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥

भावार्थ – धन-सम्पत्ति होने के समय तो बहुत से साथी हो जाते हैं किन्तु वास्तविक साथी की पहचान तो विपत्ति के समय ही होती है, जैसे स्वर्ण के खरेपन की पहचान कसौटी पर कसने के समय होती है ऐसे ही सच्चे साथी (मित्र) की पहचान विपत्ति की कसौटी पर हो जाती है।

(6)

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥

भावार्थ – भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों का साथ-साथ रहना कैसे सम्भव है ! अर्थात् असम्भव है। केला और बेर का एक ही स्थान पर (बहुत निकट रहने पर) कैसे निर्वाह हो सकता है क्योंकि दोनों की प्रकृति और बनावट भिन्न है। बेर की डालियाँ काँटेदार होती हैं जबकि केले के पत्ते आकार में बहुत बड़े होते हुए भी कोमल होते हैं। बेर के साधारण रूप से हिलने-डुलने में ही केले के कोमल पत्ते फट जाएँगे। इसी प्रकार दुष्ट और सज्जन का एक साथ निर्वाह कठिन है क्योंकि दुष्ट के स्वभावजनित कुकृत्य सज्जन के लिए कष्टकारक होते हैं।

(7)

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए नदी सिरावत मौर॥

भावार्थ – काम पड़ने पर वस्तु का महत्त्व कुछ और होता है और काम निकल जाने के पश्चात् वही वस्तु गौण हो जाती है। विवाह की भाँवरों के समय तो मौर को ससम्मान सिर पर धारण किया जाता है और विवाह सम्पन्न होने पर उसे नदी में बहा दिया जाता है।

(8)

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥

भावार्थ – दूसरे के घर जाने पर किसका बड़प्पन नहीं घटा ! सागर में विलीन होने पर गंगा की महिमा और उसका अस्तित्व नष्ट हो जाता है। निज का अन्य में विलय करने से अपना महत्त्व समाप्त हो जाता है।

(9)

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय ॥

भावार्थ – खीरे का कडुवापन दूर करने के लिए उसके ऊपरी सिरे को काटकर नमक मला जाता है। कड़वे मुँह वालों (कडुवे वचन बोलने वालों) के लिए यही दण्ड उपयुक्त है।

(10)

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥

भावार्थ – ख़ैरियत (सेहत, कुशलता), खून (क़त्ल, हत्या), खाँसी (खाँसी का रोग), ख़ुशी (प्रसन्नता, उल्लास), द्वेष (दुश्मनी, शत्रुता), प्रेम (प्यार, मुहब्बत, अनुरक्ति, सद्भाव) और मदिरापान (शराब का नशा) – ये सात बातें छुपाये नहीं छुपतीं, अन्ततः प्रकट हो ही जाती हैं।

(11)

छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहिमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥

भावार्थ – अज्ञानता और अनुभवहीनतावश छोटों का उत्पात करना स्वाभाविक है, ऐसे में बड़ों को क्षमावान् और सहनशील होना चाहिये, यही उन्हें शोभा देता है, दण्ड देना नहीं। भृगु ऋषि द्वारा विष्णु के वक्षस्थल पर पाद-प्रहार करने से विष्णु ने उन्हें दण्डित नहीं किया बल्कि क्रोधित होने की अपेक्षा उनकी क्षुद्रता को भुलाते हुए बड़ी विनम्रता और परिताप से उन्हीं की कुशलता की चिन्ता की कि कहीं इस वज्र-सदृश वक्षस्थल पर पाद-प्रहार करने से उनके कोमल पैर में चोट तो

नहीं आ गई। क्षमा करने से हानि नहीं होती प्रत्युत धैर्यशीलता तथा बड़प्पन का यश ही प्रसारित होता है।

(12)

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

भावार्थ – वास्तव में बड़ा वह है जो निर्धनों से प्रेम करे, उनके हित कल्याण के कार्य करे। क्या अत्यन्त निर्धन सुदामा द्वारिका के अधिपति कृष्ण की मित्रता के योग्य था ! फिर भी उन्होंने अपनी बाल्यावस्था के मित्र सुदामा का आदर-सत्कार किया और ससम्मान उसे धन-सम्पदा भेंट की।

(13)

जेहि अंचल दीपक दुर्यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥

भावार्थ – स्त्री अपनी साड़ी के जिस अंचल की ओट में दीपक को छिपा कर पवन से उसकी रक्षा करती है, विपरीत हवा चलने पर दीपक उसी अंचल को जला देता है। विपरीत समय होने पर मित्र भी इसी प्रकार शत्रु हो जाते हैं।

(14)

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

भावार्थ – अच्छे स्वभाव के सज्जनों का बुरी संगति भी कुछ नहीं बिगाड़ पाती है। क्रुद्ध महाविषधर सर्पो द्वारा लिपटे रहने पर भी चन्दन के वृक्षों पर सर्पों का विषैला प्रभाव व्याप्त नहीं होता। वे अपनी स्वभावजनित शीतलता और सुगन्ध का परित्याग नहीं करते।

(15)

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय॥

भावार्थ – तुच्छ व्यक्ति यदि भाग्यवश उन्नति कर जाता है तो बुरी तरह घमण्ड में भरकर फूला-फूला फिरता है। जैसे कि शतरंज का प्यादा (पैदल सिपाही) जब फर्जी यानी वजीर बन जाता है तब वह तिरछी चालें चलता है।

(16)

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय॥

भावार्थ – दीपक और कुपुत्र की दशा एक-सी होती है। जब दीपक प्रज्वलित किया जाता है तो आरम्भ में वह प्रकाश फैलाता है, इसी प्रकार कुपुत्र भी बाल्यावस्था में अपनी बालसुलभ क्रियाओं से आनन्दित करता है। लेकिन जब दीपक बढ़ाया (बुझाया) जाता है तब सर्वत्र अन्धकार फैल जाता है, इसी प्रकार कुपुत्र भी जब बढ़ता है (बड़ा होता है) तब अपने कुकृत्यों से सर्वत्र अपयश फैलाता है।

(17)

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय॥

भावार्थ – दीपक और सुपुत्र की दशा एक-सी होती है। जब दीपक प्रज्वलित किया जाता है तो अपने प्रकाश से वह निरन्तर आनन्ददायी और सुविधाजनक वातावरण का निर्माण कर देता है। इसी प्रकार सुपुत्र भी बड़ा होने के साथ-साथ निरन्तर अपने सत्कर्मों से माता-पिता को उल्लसित, आह्लादित और गौरवान्वित करता रहता है। फिर अचानक दीपक के बुझ जाने पर और सुपुत्र के चले जाने पर घर में भयानक अन्धकार किंवा दुःख छा जाता है।

(18)

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥

भावार्थ – जिस तरह दुर्लभ मोतियों के हार के बार-बार टूट जाने पर भी बहुत परिश्रम करके यत्नपूर्वक मोतियों को फिर से धागे में पिरो लिया जाता है उसी प्रकार स्वजन यदि सौ बार भी रूठ जाएँ तब भी उन्हें बार-बार किसी न किसी तरह मना ही लेना चाहिये, अहंकार को बीच में नहीं आने देना चाहिये। जीवन में स्वजनों का साथ महत्त्वपूर्ण है।

(19)

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥

भावार्थ – वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते और सरोवर स्वयं अपना जल नहीं पीते। सज्जन लोग भी सम्पत्ति का संग्रह निज सुख-भोग के लिए नहीं करते। समय आने पर वे उसका उपयोग ज़रूरतमंदों की आवश्यकताओं को पूरा करने में करते हैं। धन की सर्वोत्तम गति दान और परोपकार में खर्च करने में ही है।

(20)

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥

भावार्थ – जो लोग सम्पन्नता के दिनों में बहुत घनिष्ट मित्र हुआ करते हैं, दुर्दिन (कुसमय) में वही लोग पहचानना भी भूल जाते हैं। परम हितकारी समझे जाने वाले स्वजनों का साथ यदि ज़रूरत के दिनों में भी बना रहे तो धन की हानि उतनी पीड़ादायक नहीं होती।

(21)

दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं ॥

भावार्थ – जब तक मौन रहें तब तक सज्जन और दुर्जन की पहचान नहीं हो सकती। रूप-आकार में कौआ और कोयल दोनों एक समान होते हैं। ये जब तक नहीं बोलते तब तक इनमें अन्तर नहीं किया जा सकता। वसन्त ऋतु में कोयल की 'कुहुक' ध्वनि और कौआ के कर्कश 'काँव-काँव' उच्चारण से कोयल और कौआ दोनों में अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(22)

धन थोरो इज्ज़त बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात ॥

भावार्थ – संस्कारी व्यक्ति निर्धनता के समय भी अपने संस्कार नहीं छोड़ते। शीलवान परिवार की वधू अभावग्रस्त स्थितियों में भी अपने मान पर आँच नहीं आने देती।

(23)

नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥

भावार्थ – सगे-सम्बन्धियों तथा रिश्तेदारों से किसी ख़ास अवसर या त्योहार पर मिलना-जुलना ही अच्छा है तभी उस स्नेह की उष्णता बनी रह सकती है। रोज-रोज मिलने से उनके व्यवहार में उपेक्षा और मान-सम्मान में कमी आने लगती है। ठहराव होने से गड़ही के जल का निरादर होने लगता है।

(24)

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥

भावार्थ – वर्षाकाल में जब मेढक टर्राने लगते हैं तब कोयल मौन साध लेती है। जब शीर्षपद पर चाटुकारिता-प्रिय व्यक्ति आसीन हो जाते हैं उस समय गुणहीन और वाचाल व्यक्तियों का ही बोलबाला हो जाता है। ऐसे में गुणीजन मौन साध लेते हैं क्योंकि झूठी ख़ुशामद करना उनकी प्रवृत्ति नहीं होती।

(25)

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥

भावार्थ – कभी संयोगवश ओछा व्यक्ति बड़ा पद पाकर ऐंठने लगता है, उसके व्यवहार में घमण्ड झलकने लगता है। इसी से अपने से अधिक योग्य और बड़ों के गुणों की उपेक्षा कर वह उनका अपमान करने लगता है। लेकिन उसकी इस क्षुद्रता को देखकर योग्य और सामर्थ्यवान मनुष्य कभी अपना बड़प्पन कभी नहीं छोड़ते, उसकी धृष्टता को देख क्षुब्ध होकर उसके स्तर पर नहीं उतर आते। अवसर पर राई जैसा छोटा बीज तो फूलकर करौंदा हो जाता है लेकिन कटहल कभी राई के समान छोटा नहीं होता।

(26)

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥

भावार्थ – यह सामर्थ्यवान व्यक्तियों का लक्षण है कि वे स्वयं अपनी बड़ाई कभी नहीं करते और न ही कभी अपनी शक्ति-सामर्थ्य से परे अतिशयोक्ति करते हैं। बहुमूल्य हीरा स्वयं अपनी महत्ता का बखान कभी नहीं करता, उसका मूल्य तो जौहरी ही जानते हैं। इसी तरह गुणवान व्यक्ति की कद्र तो कोई गुणगाहक ही कर सकता है।

(27)

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यौ परोस॥

भावार्थ – यह चिन्ताजनक है कि मनुष्य एक ओर अपना मंगल भी चाहता है और साथ ही समझने-बूझने के बावजूद भी दुष्ट व्यक्तियों का संग करता है। ऐसी स्थितियों में उसकी कुशल कैसे सम्भव है ! समुद्र को कभी बाँधा नहीं जा सकता था लेकिन समुद्र पार स्थित लंका पहुँचने के लिए राम ने उस पर पुल बाँध दिया। दुर्जन रावण की संगति से ही समुद्र की महिमा हमेशा के लिए घट गई।

(28)

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

भावार्थ – बात जब एक बार बिगड़ जाती है तो फिर लाख उपाय करने पर भी सँवरती नहीं। फटे दूध को कितना भी मथा जाये, उससे मक्खन नहीं निकाला जा सकता। प्रीति-सम्बन्धों में यदि एक बार भी छल-छद्म या कटुता का व्यवहार हो गया और उससे सामने वाले को ठेस लग गई तो अब पहले जैसी मधुरता आना असम्भव है।

(29)

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय॥

भावार्थ – निरन्तर मथते-मथते दही से मट्ठा अलग हो जाता है, तब वहाँ मक्खन ही शेष रह जाता है। जीवन की विकट परिस्थितियों में संघर्ष करते-करते सारे बनावटी और झूठे सगे-सम्बन्धी, मित्र-परिचित मुँह फेर लेते हैं। विपत्ति के समय भी जो साथ ठहरा रहे वही सच्चा मित्र है।

(30)

माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करो, तऊ बावनै नाम॥

भावार्थ – माँगने से सम्मान सदा घटता ही है फिर बाद में चाहे कितना ही बड़ा काम क्यों न किया जाये, वह लांछन मिटता नहीं। बौने (बौना = वह व्यक्ति जो कद में बावन अँगुल का हो) ब्राह्मण का भेष बनाकर बलि से भिक्षा माँगने के कारण विष्णु का एक नाम सदा के लिये वामन भी हो गया।

यद्यपि बाद में तत्काल ही विष्णु ने केवल तीन ही पग में समूची वसुधा को नाप लिया था तथापि वामन नाम की प्रसिद्धि हो गई।

(31)

मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस॥

भावार्थ – ससम्मान मनुहार करने पर सागर-मंथन से निकले हुए विष जैसी भयानक एवं त्याज्य वस्तु का पान करने पर भी महादेव जगदीश के नाम से विख्यात हुए जबकि बिना बुलाए, चोरी-छिपे आकर अमृत सदृश उत्कृष्टतम पदार्थ का पान करने पर भी राहु को अपना शीश कटाना पड़ा।

समुद्र में देवता और दानवों के सम्मिलित प्रयास से समुद्र मथा गया । उससे चौदह रत्न निकले। उनमें सबसे पहले कालकूट हलाहल विष निकला। विष की उष्णता से सारा संसार जलने लगा। तब सभी की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने जगत् के कल्याण के लिए विष को अपने कण्ठ में धारण कर लिया।

चौदह रत्नों में सबसे अन्त में अमृत निकला। अमृत को दानवों ने छीन लिया तथा आपस में लड़ने लगे। ऐसे में भगवान् विष्णु ने विश्वमोहिनी का रूप धारण कर अमृत घट लेकर देवताओं और दैत्यों को अलग-अलग पंक्तियो में बैठने के लिये कहा तथा दैत्यों को अपने कटाक्ष से मदहोश करते हुये देवताओं को अमृतपान कराने लगे। दैत्य उनके कटाक्ष से ऐसे मदहोश हुये कि अमृत पीना ही भूल गये। विष्णु की इस चाल को राहु नामक दैत्य समझ गया । वह देवता का रूप बना कर उनकी पंक्ति में आ मिला और प्राप्त अमृत को मुख में डाल लिया। सूर्य तथा चन्द्रमा ने, जो उसके अगल-बलग में थे, उसे पहचान लिया तथा विष्णु को इसकी सूचना दी। विष्णु ने तत्काल अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर गर्दन से अलग कर दिया।

(32)

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा न होय।
चीता, चोर, कमान के, नये ते अवगुन होय॥

भावार्थ – हिंसक, कपटी और दुष्ट व्यक्ति कभी अपनी क्रूरता नहीं छोड़ते। वे कभी भूले से भी विनम्र अथवा शान्त दिख जाएँ तब उन्हें समझने में भूल नहीं करनी चाहिये क्योंकि उनकी वह विनम्रता केवल दिखावटी और कपटपूर्ण होती है। चीता, चोर और धनुष की कमान – ये तीनों झुके हुए दिखाई देने पर भी वास्तविकता में हृदय से विनम्र नहीं होते बल्कि वे उस वक़्त घात लगाने की तैयारी कर रहे होते हैं। चीता आक्रमण करने से पूर्व झुक कर पीछे होता है। चोर भी चोरी करने

जाते समय झुककर, छिप-छिप कर जाता है। इसी प्रकार धनुष की कमान भी नीचे या पीछे खींचने के बाद तीर फेंक कर प्राण-हानि करती है।

(33)

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

भावार्थ – नयनों से ढरक कर आँसू हृदय का दुःख प्रकट कर देते हैं। घर से निकाला गया पारिवारिक सदस्य घर का गूढ़-भेद अन्य लोगों को बता ही देता है।

(34)

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति॥

भावार्थ – तुच्छ प्रवृत्ति के मनुष्यों से प्रीति और शत्रुता दोनों ही करना हितकारी नहीं है। श्वान का काटना और चाटना दोनों ही नुकसानदायक होता है। चाट कर वह शरीर को अपावन करता है और काटने पर पीड़ादायक होता है।

(35)

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत॥

भावार्थ – चिन्ता चिता से अधिक भयानक और हानिकारक है। कठोर चिन्ताओं से अपने को मुक्त कर अपने चित पर नियन्त्रण करना चाहिये क्योंकि चिता तो मृतक देह को दग्ध करती है जबकि चिन्ता तो जीते जी ही व्यक्ति को अहर्निश लील जाती है।

(36)

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ॥

भावार्थ – धृष्ट व्यक्ति सीधी तरह कहने पर कोई काम नहीं करता। उसके लिए दण्डनात्मक विधान ही उचित होता है। अनुनय-विनय करने से चाक कुम्हार को दीपक बनाकर नहीं देता। वांछित पात्र बनाने के लिए कुम्हार को चाक के छेद में डण्डा डालकर उसे बलपूर्वक घुमाना पड़ता है फिर

दीपक तो छोटी-सी चीज है तब उस पर मिट्टी के बड़े-बड़े पात्र तक बड़ी आसानी से बनाये जा सकते हैं।

(37)

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम॥

भावार्थ – ओछे व्यक्तियों से कभी बड़े काम सम्भव नहीं होते। भला चूहों के चमड़े से भी कभी नगाड़ा बनाया जा सकता है! सौ चूहों के चमड़े मिलाकर भी नगाड़ा बनाने में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती।

(38)

रहिमन जगत बड़ाई की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करै तन हानि॥

भावार्थ – प्रशंसा में सुख मानना भूल है। संसार में प्रशंसा-प्राप्ति और कुत्ते से जान-पहचान होना एक समान है। प्रीति होने पर कुत्ता मुँह चाटने लगता है और शरीर को अपवित्र करता है जबकि बैर होने पर काटकर हानि पहुँचाता है। इसी प्रकार अनुकूल समय में प्रशंसा करने वाले लोग ही प्रतिकूल परिस्थितियों में निन्दा करने लगते हैं। प्रशंसा के समय वे व्यक्ति को गर्वोन्मत्त करके उसकी हानि करते हैं जबकि निन्दा के समय वे उसके चित्त को अशान्त करके असहनीय पीड़ा पहुँचाते हैं।

(39)

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥

भावार्थ – मनुष्य को वचन-व्यवहार में सावधानी बरतनी चाहिये, बहुत विवेकपूर्वक विचार करके ही बोलना चाहिये। वाचाल ज़ुबान स्वर्ग और पाताल तक की उलटी-सीधी बातें बक कर स्वयं तो मुँह और दाँतों के भीतर होकर सुरक्षित हो जाती है किन्तु इसके बड़बोलेपन का दण्ड बेचारे निरीह मस्तक को भुगतना पड़ता है।

(40)

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि॥

भावार्थ – स्थान और अवसर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु की अपनी उपादेयता होती है। इसलिए बड़े और समर्थ व्यक्तियों से सम्पर्क बढ़ने पर अपेक्षाकृत कमजोर परिचितों को महत्त्वहीन समझ उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। सुई के माध्यम से करणीय कार्य सुई से ही सम्भव होता है वहाँ तलवार की उपलब्धता व्यर्थ है।

(41)

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परि जाय॥

भावार्थ – प्रेम का सम्बन्ध कच्चे धागे के समान होता है। छोटी-छोटी बातों पर मन-मुटाव कर इसे छिटकाकर तोड़ना उचित नहीं। समय बीतने और भ्रान्ति दूर होने पर भूल-सुधार कर यदि वही प्रेम-सम्बन्ध पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जाए तब उन सम्बन्धों में पहले की-सी सरसता, अनुराग और समर्पण उत्पन्न नहीं हो पाता। एक बार धागा टूटने पर उसे पुनः मिलाने-जोड़ने की चेष्टा की जाय तब भी वहाँ गाँठ का व्यवधान तो उपस्थित हो ही जाएगा।

(42)

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥

भावार्थ – अपनी व्यथा, पीड़ा और दुःख को निज मन के भीतर छिपा कर रखना ही उचित है। अन्य लोग उसे सुनकर इठला भले ही लें, बाँटकर कम नहीं कर सकते। अपना कष्ट स्वयं को ही भोगना पड़ता है।

(43)

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि॥

भावार्थ – निकृष्ट कर्म करने वाले व्यक्तियों का संग करने से भला किसे कलंक नहीं लगता! शराब बेचने वाली कलारी के हाथ में दूध देख कर सब लोग दूध को भी शराब ही समझते हैं।

(44)

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुष, चून॥

भावार्थ – मोती का मूल्य तभी तक है जब तक उस पर आब, चमक, आभा, कान्ति विद्यमान है। चून का उपयोग भी पानी पर ही निर्भर है। इसी प्रकार समाज में उसी मनुष्य को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जिसकी आँख में मर्यादा, संस्कार और संकोच का पानी बना रहे। जिसकी आँख का पानी मर गया हो यानी जिसने अपनी लज्जा और आत्मसम्मान खो दिया हो वह व्यक्ति समाज में महत्त्वहीन हो जाता है।

(45)

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन॥

भावार्थ – खीरे का सिरा प्रकट में तो ऊपर से मिला हुआ दीखता है लेकिन भीतर उसके तीन फाँके फूटी हुई होती हैं। सच्चा प्रेम वही है जो भीतर-बाहर एक-सा हो। मन में ईर्ष्या-द्वेष का भाव और प्रकट में प्रेम का दिखावा करना, यह रीति घृणित और त्याज्य है।

(46)

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम॥

भावार्थ – जो बात आरम्भ में बिगड़ जाती है, वह फिर लाख प्रयत्न और बहुत धन व्यय करने पर भी ठीक नहीं होती। राजा बलि को छलने के लिए बावन का रूप धारण करने वाले विष्णु बाद में यद्यपि विशाल आकार धारण कर आकाश तक बढ़ गए तथापि उनका बावन नाम ही प्रसिद्ध हो गया।

(47)

रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥

भावार्थ – विपत्ति का आना भी एक तरह से ठीक ही है क्योंकि विपदा समय ही सच्चे मित्र, हितैषी और स्वजन की परीक्षा हो पाती है। इसलिए अल्पकालीन विपत्ति को लाभकारी ही मानना चाहिये।

(48)

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात॥

भावार्थ – याचना बड़े से बड़े व्यक्ति का कद घटा देती है। असुरों के प्रतापी राजा बलि से दान लेने के लिए विराट् स्वरूपवान सृष्टिपालक भगवान् विष्णु को बावन अँगुल का छोटा-सा शरीर धारण करना पड़ा था।

(49)

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

भावार्थ – सामान्यतः जब तक असहनीय स्थिति न बन जाय, स्वाभिमानी व्यक्ति कभी किसी से सहायता की याचना नहीं करते। बहुत प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर जब कि सहयोग के बिना जीवन ही दुष्कर हो जाय उस समय अपने स्वाभिमान को नष्ट कर, अत्यधिक लज्जा के साथ ही वे अपने स्वजन वा परिचित से सहयोग की कामना करते हैं और उनके सामने याचना करते हैं। अपने स्वाभिमान को मार कर याचना करना उस व्यक्ति का अपने आप को मारने के समान ही है किन्तु ऐसे अपने मित्र की परिस्थितियों से भली-भाँति परिचित होते हुए भी स्वजन वा मित्र कहलाने वाला व्यक्ति यदि सहायता करने से मना कर दे तो उसे माँगने वाले से भी पहले (अधिक) मरा हुआ समझना चाहिये।

(50)

रौळ बिगाड़े राज नै, मोल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल॥

भावार्थ – दिन-प्रतिदिन के रोळे, हुल्लड़, आन्दोलन और विद्रोह राज्य की सुख-शान्ति और व्यवस्था को चौपट कर अराजकता का माहौल बना देते हैं, ज़मींदार और सामन्त निज हित में राज्य की सम्पत्ति का दुरुपयोग कर राज्य की समृद्धि को नष्ट कर देते हैं और चुगलखोर चाटूकार झूठी-सच्ची चुगलियाँ करके धीरे-धीरे सरदार (राजा) की चाल (रीति) को ही विकृत कर देते हैं।

(51)

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग॥

भावार्थ – वे मनुष्य धन्य हैं जो अहर्निश परहित में निरत रहते हैं। सिलबट्टे पर मेंहदी बाँटने (पीसने) वाले के हाथ अनायास ही मेंहदी के रंग में रंग जाते हैं। समाज-कल्याण के कार्य करने से निज

कल्याण स्वतः ही हो जाता है क्योंकि परोपकारी भी तो समाज का ही एक अंग है । सर्वत्र अहिंसा, शान्ति, सुख और समृद्धि की व्याप्ति होने से सबका भला होता है।

(52)

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय॥

भावार्थ – सृष्टि में प्रत्येक कार्य नियत समय पर ही होता है। वह न तो जल्दबाजी मचाने से जल्दी हो जाता है और न समय आने पर किसी के रोके रुक सकता है। उपयुक्त समय आने पर ही वृक्ष में फल लगता है और झड़ने का अवसर आने पर स्वतः ही झड़ जाता है। सुख-समृद्धि का समय और दुरावस्था भी सदा एक जैसी नहीं बनी रहती इसलिए दु:ख के समय पछताना व्यर्थ है।

सोरठा

(53)

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरो पै कारौ लगै॥

भावार्थ – क्षुद्र व्यक्ति का साथ, जितना जल्दी हो सके, छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। अंगार जब तक गरम रहता है, तब तक उसका स्पर्श शरीर को जलाता है और जब ठण्डा हो जाता है तब उसके स्पर्श से शरीर पर कालिख लग जाती है। इस प्रकार दोनों ही अवस्थाओं में वह हानिकारक है।

(54)

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावै मान बिनु।
बरु विष देय, बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

भावार्थ – व्यक्ति को प्रत्येक स्थिति में आत्मसम्मान बनाए रखना चाहिये। सम्मान के बिना कोई अमृत भी पिलाये तो वह रुचिकर नहीं होता। इसकी बजाय सम्मानपूर्वक विष का पान करना ज्यादा अच्छा है। सम्मानहीन जीवन की अपेक्षा सम्मानसहित मृत्यु श्रेयस्कर है।

❖❖❖

बिहारीलाल

दोहा

(1)

अजौ तर्‌यौना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग॥

शब्दार्थ – अजौ = अद्यापि, आज तक भी, अब तक भी। तर्‌यौना = 1. कर्णफूल (अधोवर्ती) 2. तरा नहीं। श्रुति = 1. कान, 2. वेद। इकरंग = 1. एक ढंग से, ज्यों का त्यों, 2. अविच्छिन्न रूप से। नाक-बास = 1. नासिका का निवास, 2. स्वर्ग-निवास। बेसरि = 1. नासिका-भूषण विशेष 2. खच्चरी अर्थात् महाअधम प्राणी। मुकुतनु = 1. मुक्ताओं, 2. जीवन मुक्त सज्जनों, महात्माओं।

(2)

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाँहिं।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहिं॥

शब्दार्थ – जिहिं = जिसके द्वारा। देखियै = देखा जाता है।

(3)

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि॥

शब्दार्थ – दीरघ साँस = लम्बी साँस, जैसी दुःख में मनुष्य लेता है। साईंहिं = स्वामी को। कबूलि = अंगीकृत कर।

(4)

सीतलताऽरु सुबास कौ घटै न महिमा-मूरु।
पीनस वारैं जौं तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥

शब्दार्थ – मूरु (मूल) = जड़, मूलधन। पीनस वारैं = पीनस रोग वाले ने। (पीनस एक नासा-रोग विशेष है, जिससे रोगी को गन्ध का अनुभव होना रुक जाता है।) सोरा (शोरा) = मिट्टी में से निकाला हुआ एक खारा पदार्थ।

(5)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु जग-नाइक, जग-बाइ॥

शब्दार्थ – टेरतु = पुकार रहा हूँ। जग-बाइ = संसार की हवा अर्थात् संसार का बुरा प्रभाव।

(6)

जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरक हूँ की न॥

शब्दार्थ – जुगति (युक्ति) = उपाय। सजन (सज्जन अथवा स्वजन) = अपना प्यारा। धरक = डर, भय।

(7)

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जापैं सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि॥

शब्दार्थ – आछी भाँति = अच्छी रीति से, प्रसन्नतापूर्वक। अएरि = अंगीकार कर के।

(8)

तंत्री-नाद कबित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥

शब्दार्थ – तंत्री-नाद = वीणा इत्यादि का मधुर स्वर। कबित्त-रस = काव्य का स्वाद। सरस राग = रसीला स्नेह अथवा रसीला गान। रति-रंग = प्रीति का अथवा स्त्री-संग का आनन्द। अनबूड़े = अधबूड़े, जो पूरी तरह से नहीं डूबे हैं। बूड़े = डूबे, नष्ट हुए। तरे = तर गये, पार हो गये। बूड़े = निमग्न हो गए, लिप्त हो गए। सब अंग = सर्वांग, पूर्ण रीति से।

(9)

जेती संपति कृपन कैं तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज, त्यौं-त्यौं होत कठोर॥

शब्दार्थ – सूमति = कृपणता। जोर = जोर पर होती है। कठोर = 1. कड़े। 2. निर्दय, किसी याचक पर न पसीजने वाले।

(10)

संपति केस सुदेस नर नवत, दुहुनि इक बानि।
विभव सतर कुच, नीच नर, नरम बिभव की हानि ॥

शब्दार्थ – संपति (सम्पत्ति) = भरा-पूरा होना। (केश के पक्ष में इसका अर्थ बाढ़ तथा नर के पक्ष में धन होता है।) सुदेस (सुदेश) = श्रेष्ठ स्थान वाले, उच्च पद वाले। नवत = केश के पक्ष में इसका अर्थ 'नीचे की ओर चलते हैं' और नर के पक्ष में 'नम्र होते हैं' है। बानि = प्रकृति। बिभव = वैभव। (केश के पक्ष में इसका अर्थ बाढ़ तथा नर के पक्ष में ऐश्वर्य है।)

(11)

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥

शब्दार्थ – अनुरागी = प्रेमी, अनुराग-युक्त। कवि-समय के अनुसार अनुराग का रंग लाल माना जाता है अतः 'अनुरागी' का अर्थ लाल रंग वाला भी होता है। गति = चाल, रीति, व्यवस्था।

(12)

कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम॥

शब्दार्थ – सरत = सिद्ध या पूरा होता है। दमामौ = बड़ा नगाड़ा, जो ऊँट अथवा हाथी पर लाद कर ले जाया जाता है। चाम = चमड़ा।

(13)

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु॥

शब्दार्थ – जपमाला = जपने की माला। छापैं = छापे से, तप्त मुद्रा इत्यादि से। सरै = सधता है। मन-काँचै = कच्चे मन वाला ही, बिना सच्ची भक्ति वाला ही। साँचै = सच्चे ही से, सच्ची भक्ति ही से। राँचै = रीझते हैं, रंजित होते हैं, प्रसन्न होते हैं।

(14)

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥

शब्दार्थ – डोलत = घूमता-फिरता है। चसमा (चश्मा) = ऐनक, जिसके लगा लेने से छोटी वस्तु बड़ी दिखलाई देने लगती है। चखनु = आँखों पर।

(15)

आवत जात न जानियतु तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ-जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु॥

शब्दार्थ – तेज = 1. उष्णता, 2. स्वभाव की उग्रता। सियरानु = 1. शीतल हो गया, 2. नम्र हो गया, ठण्डा पड़ गया। घरहँ-जँवाई = घर-जमाई। पूस-दिन = पौष मास का दिन। मानु = प्रमाण, मान, प्रतिष्ठा।

(16)

बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ॥

शब्दार्थ – हूजै = हो सकते। बिरद (विरुद) = प्रशंसात्मक नाम, प्रसिद्धि। कनकु = सोना।

(17)

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ इहिं पाऐं हीं बौराइ॥

शब्दार्थ – कनक = 1. धतूरा, 2. सोना। मादकता = उन्मत्त करने की शक्ति, नशा। अधिकाइ = बढ़ जाता है।

(18)

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध॥

शब्दार्थ – सुमति = सद्बुद्धि। कुमति = दुर्बुद्धि। धंध = जंजाल, फेर। मेलि = मिलाकर।

(19)

जात-जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोषु ।
होत होत जौ होइ तौ होइ घरी मैं मोषु ॥

शब्दार्थ – जात-जात = जाते-जाते, नष्ट होते समय । बितु (वित्त) = धन । होत होत = होते-होते, संचित होने के समय । घरी मैं = घड़ी भर में ही, अतिशीघ्र । मोषु = मोक्ष ।

(20)

गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूढ़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु-नरनु कौ प्रेम-पयोधि पगारु ॥

शब्दार्थ – रसिक = भगवान् की लीलाओं का आस्वाद लेने वाले भक्त । जहाँ = जिसमें । हजारु = सहस्र, अनन्त । पसु = पशुवृत्तधारी, अर्थात् भगवद्प्रेम के भावों से रहित, अरसिक । प्रेम = भगवद्प्रेम । पयोधि = समुद्र । पगारु = सुगमता से हल कर पार उतर जाने योग्य छोटी खाई या गड्ढा मात्र ।

(21)

सोहतु संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु ।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु ॥

शब्दार्थ – सोहतु = शोभायमान होता है । समान = बराबरी का । जोगु = साथ, मेल ।

(22)

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु बृथा; देखि, बिहंग, बिचारि ।
बाज, पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥

शब्दार्थ – स्वारथु = अपना लाभ । सुकृतु = पुण्यकर्म । श्रमु बृथा = व्यर्थ श्रम । बिहंग (विहंग) = आकाशगामी, स्वच्छन्द-बिहारी, दूरदर्शी पक्षी । पानि (पाणि) = हाथ । पच्छीनु = 1. पक्षियों को, 2. अपने पक्षवर्तियों अर्थात् स्वजातियों को ।

(23)

संगति-दोषु लगै सबनु, कहे ति साँचे बैन ।
कुटिल-बंक-भ्रुव-सँग भए कुटिल, बंक-गति नैन ॥

शब्दार्थ – कुटिल = टेढ़ी आकृति वाली । बंक (वक्र) = टेढ़े स्वभाव वाली, छली, निर्दय ।

(24)

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊँचौ होइ॥

शब्दार्थ – नल-नीर = फुहारे के नल का पानी। गति = चाल, व्यवस्था। एकै करि = एक ही समान। जोइ = देखी जाती है।

(25)

बढ़त-बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ॥

शब्दार्थ – सलिलु (सलिल) = जल। सरोज = कमल। बरु = भले ही। समूल = मूल-सहित, जड़ सहित।

(26)

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल-बल जलु ऊँचैं चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु॥

शब्दार्थ – प्रकृतिहिं = मूल स्वभाव में। बीचु = भेद, फर्क, अदल-बदल। नल-बल = नल के सहारे से।

(27)

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह-निकसे बैन।
याही तैं मानहु किये बातनु कौं बिधि नैन॥

शब्दार्थ – झूठे = 1. जूठा अर्थात् उच्छिष्ट, 2. झूठा अर्थात् मिथ्या। न संग्रहे = 1. सादर ग्रहण नहीं किये, 2. विश्वास योग्य नहीं समझे। मन = मन ने। बैन = वचन। बातनु कौं = 1. वृत्तियों के निमित्त, जीविकाओं के निमित्त, 2. (हृदय की) बातों के निमित्त। बिधि = विधाता।

(28)

गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक समानु उदोतु॥

शब्दार्थ – तरु अरक (तरु अर्क) = तरु रूपधारी अर्क अर्थात् मदार का वृक्ष। अरक (अर्क) = सूर्य। उदोतु = ज्योति, प्रकाश।

(29)

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु ॥

शब्दार्थ – दुसह = असहनीय, अत्यन्त क्षमतावान । दुराज = दो राजा । दुख-दंदु = दुःख-द्वन्द्व, दुःख का झगड़ा अर्थात् दो दुःखों का उत्कर्ष । मावस = अमावस्या ।

(30)

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन-हियैं, दई, नई यह रीति ॥

शब्दार्थ – दृग = आँख । उरझत = आपस में गूथते हैं अर्थात् मिलते हैं। टूटत कुटुम = कुटुम्ब के सम्बन्ध टूट जाते हैं । जुरत = प्रेम से परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं । गाँठि = आँट, ईर्ष्या । हियैं = हृदय में । दई = विधाता । नई = अनोखी ।

(31)

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु ॥

शब्दार्थ – बुराई = हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति । सनमानु = सम्मान । भलौ (भला) = सीधा, समझदार, सज्जन । कहि = कहकर । खोटैं = बुरे, अनिष्टकारी ।

(32)

जो चाहौ, चटक न घटै, मैलो होइ न, मित्त ।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह-चीकनौं चित्त ॥

शब्दार्थ – चटक = चटकीलापन, चमक-दमक,स्फूर्ति । मैलो = मलिन । मित्त = हे मित्र ! । रज = धूलि । राजसु = रजोगुण अर्थात् गर्व, क्रोध इत्यादि । नेह-चीकनौं = स्नेह से चिकनाया हुआ चित्त ।

(33)

कोरि जतन कीजै, तऊ नागर-नेहु दुरै न।
कहै देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन ॥

शब्दार्थ – कोरि = करोड़ों। तऊ = तो भी। नागर = प्रियतम। दुरै न = छिपता नहीं। चीकनौ = स्निग्ध, अनुरक्त। नई रुखाई = बनावटी रुखाई।

(34)

अति अगाधु अति औथरौ, नदी, कूपु, सरु, बाइ।
सो ताकौ सागरु, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ॥

शब्दार्थ – अगाधु = अथाह। औथरौ = उथला, छिछला। कूपु = कुँआ। सरु = तालाब। बाइ (वापी) = बावड़ी। सागरु = समुद्र।

(35)

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक, राजा, रोग॥

शब्दार्थ – श्रुति = वेद। सुम्रत्यौ = स्मृति भी। सयाने = सज्ञान। दबावत = सताते हैं। निसकहीं = शक्तिहीन को ही, निर्बल को ही। पातक = पाप।

(36)

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल॥

शब्दार्थ – लखैं = देखकर। भूल = गलती। दीने = दिया है। दई = दैव, विधाता। डारनु = (कँटीली और सूखी) डालियों में।

(37)

समै-समै सुन्दर सबै, रूपु-कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥

शब्दार्थ – समै-समै = समय-समय पर। जेती = जितनी। जितै = जिस ओर। तित = जिस ओर। तेती = उतनी।

(38)

दिन दस आदरु पाइ कै करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥

शब्दार्थ – दिन दस = दो-चार-दस दिन (कुछ दिन)। बखानु (बखान) = आत्मश्लाघा। जौ लगि = जब तक। काग = हे काक !। सराधपखु (श्राद्धपक्ष) = पितृपक्ष। तौ लगि = तब तक। सनमानु = सम्मान।

(39)

चल्यौ जाइ, ह्याँ को करै हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं धोबी, ओड़, कुँभार ॥

शब्दार्थ – ह्याँ = यहाँ। पुर = गाँव। ओड़ = बेलदार।

(40)

इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं, बहैं हजार।
किते न औगुन जग करैं बै-नै चढ़ती बार ॥

शब्दार्थ – इक = एक कोई तो। चहलैं परैं = दलदल, कीचड़ में फँस जाते हैं। बूड़ैं = डूब जाते हैं। बहैं = बह जाते हैं। औगुन = उत्पात, अनर्थ। बै = वयक्रम। नै = नदी। बै-नै = वयरूपी नदी। चढ़ती बार = चढ़ते समय।

(41)

मीत, न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियै धनु जोरि।
खाऐं खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥

शब्दार्थ – मीत = हे मित्र !। नीति न = नीति नहीं है, उचित नहीं है। गलीतु ह्वै = दुर्दशा में होकर, गल-पचकर, अत्यन्त दुःख सहकर। धरियै = रखा जाये। जोरि = इकट्ठा करके। खाऐं खरचैं = आवश्यक कार्यों हेतु व्यय करने के पश्चात्।

(42)

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु॥

शब्दार्थ – बुरौ = बुरा व्यक्ति। खरौ = बहुत ज्यादा। डरातु = डरता है। मयंकु = चन्द्रमा। गनैं = गिनते हैं, सम्भावना करते हैं। उतपातु = उपद्रव।

(43)

अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू, जिहिं बस होत सुजान॥

शब्दार्थ – अनियारे = कोरदार। दीरघ = बड़े। दृगनु = नेत्रों में। किती न = कितनी ही, अनेक। जिहिं = जिसके। सुजान = रसिक, गुणीजन।

(44)

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंक हूँ फारि निहारैं नैन॥

शब्दार्थ – सतर ह्वै = तनेने होकर, ऐंठ कर। गैन = गगन, आकाश। नैंक हूँ = किंचित् मात्र भी। फारि निहारैं = फाड़-फाड़ कर देखने से।

(45)

जद्यपि सुंदर, सुघर, पुनि सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरियै जितैं सनेह॥

शब्दार्थ – सुघर (सुघड़) = अच्छी गढ़न वाली। सगुनौ (सगुन) = 1. बत्ती (डोरा) सहित, 2. शुभगुण-सम्पन्न। तऊ = तथापि। तितौ = उतना ही। जितैं = जितना। सनेह = 1. तेल, 2. प्रेम।

(46)

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन-नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यौ चोल-रँग चीरु॥

शब्दार्थ – चटक = चटकीलापन, प्रेम के रंग की उत्कर्षता। घटत हूँ = हीन अवस्था को प्राप्त होते हुए भी, अर्थात् निर्धन, निर्बल होने पर भी। सज्जन = सदाचारी, सहृदय। नेहु = 1. अनुराग, 2. तेल। गँभीरु (गम्भीर) = गहरा, पक्का। बरु = भले ही। चीरु = वस्त्र। चोल-रँग = चोल का रंग, मँजीठ का रंग।

❖❖❖

वृन्द

(1)

अति परिचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देत जराय॥

भावार्थ – मित्रता, परिचय, पहचान एक मर्यादा तक सीमित रहें तभी रुचि और आदर का भाव बना रहता है। अति घनिष्ठता निजता और गोपनीयता का हरण कर लेती है। गुणवान, सामर्थ्यशाली और शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति भी अति परिचय का शिकार होने पर महत्त्व भुलाकर उपेक्षित किया जाने लगता है। मलयगिरि-निवासिनी स्त्रियाँ निरन्तर चन्दन के वृक्षों के मध्य रहने से चन्दन के गुण, सामर्थ्य और महत्त्व को भूलकर उसकी लकड़ियों का उपयोग चूल्हे-चौके में जलाने के लिए करती हैं।

(2)

अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यों त्यों भारी होय॥

भावार्थ – अनधिकारपूर्वक किसी वस्तु के लिए हठ करना उचित नहीं कहा जा सकता। अन्यायपूर्ण साधनों से अपना हठ मनवाने वाले धृष्ट व्यक्ति से सभी घृणा करते हैं और दूरी बनाए रखना चाहते हैं। भारी कम्बल को कोई नहीं ओढ़ना चाहता।

(3)

अपनी पहुँच बिचारि कैं करतब करियै दौर।
तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर॥

भावार्थ – अपनी शक्ति और सामर्थ्य का भली प्रकार विचार करके ही अपने कार्यक्षेत्र और व्यापारादि के विस्तार के लिए दौड़-धूप करनी चाहिये। चादर के आकार से अधिक पैर पसारने से तो स्वास्थ्य-हानि और जग-हँसाई ही होती है।

(4)

अरि छोटौ गनियै नहीं जाते होत बिगार।
तिन-समूह को छिनक मैं जारत तनक अंगार॥

भावार्थ – शत्रु को कभी कमजोर नहीं मानना चाहिये। उसे छोटा समझना ही कभी-कभी विनाश का कारण बन जाता है। थोड़ा-सा अंगार भी क्षणभर में पूरे वन-प्रदेश को जला कर राख कर सकता है।

(5)

उत्तम जन सौं मिलत ही अवगुनहूँ गुन होय।
घन सँग खारौ उदधि मिलि बरसैं मीठौ तोय॥

भावार्थ – सज्जनों की संगति में आते ही अवगुण नष्ट होने लगते हैं और सद्गुणों का उद्रेक होने लगता है। समुद्र का कड़ुवा जल जब वाष्प बनकर परोपकारी मेघों की संगति करता है तब सत्संगति के प्रभावस्वरूप वही कड़ुवा जल मीठे पेय जल में परिवर्तित हो धरती के प्राणियों की प्यास बुझाने लायक बन जाता है।

(6)

उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
पर्‌यो अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय॥

भावार्थ – यदि अधम व्यक्ति भी विद्यावान है तो उससे विद्या-प्राप्त करने में संकोच नहीं करना चाहिये। स्वर्ण यदि अपवित्र स्थान पर भी गिरा पड़ा हो तब भी उसका मूल्य कम नहीं हो जाता।

(7)

उद्यम कबहुँ न छाँड़िये पर आसा के मोद।
गागरि कैसैं फोरियै उनयौ देखि पयोद॥

भावार्थ – परायी आशा के आनन्द में पड़कर उद्यम करना नहीं छोड़ देना चाहिये। मेघ आते देखकर क्या कोई अपना घड़ा फोड़ देता है!

(8)

उद्दिम बुधि-बल सौं मिलै तब पावत सुख-साज।
अंध कंध चढ़ि पंगु ज्यौं सबै सुधारत काज॥

भावार्थ – संसार भर के सुख-भोग उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं जो बुद्धिमान होने के साथ ही अथक परिश्रम भी करते हैं। उद्यम या बुद्धि-बल दोनों में से एक की भी कमी होने से सफलता नहीं मिल सकती। नेत्रहीन मित्र के पास नेत्र नहीं हैं किन्तु शारीरिक बल है, दूसरी ओर पैरों से लाचार मित्र के पास शारीरिक अशक्तता है किन्तु वह सम्पूर्ण परिवेश को भली-भाँति देख सकता है। ऐसे में यदि वे दोनों मिलकर एक हो जाएँ यानी एक-दूसरे का सहयोग करें तो शारीरिक अक्षमता के बावजूद वे स्वस्थ मनुष्य के समान अपने समस्त कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं।

(9)

ऊँचे बैठे ना लहैं गुन बिन बड़पन कोइ।
बैठो देवल सिखर पर बायस गरुड़ न होइ॥

भावार्थ – व्यक्ति सद्‌गुणों से बड़ा होता है, पद से नहीं। उच्च पद तो भाग्यवश अथवा कभी-कभी छल-छद्म या चाटुकारिता के माध्यम से भी प्राप्त किया जाता है। केवल उच्च पद पर आसीन होने से व्यक्ति बड़ा नहीं हो जाता। मन्दिर के शीर्ष स्थान पर बैठा धृष्ट कौआ कभी पक्षीराज गरुड़ नहीं हो जाता।

(10)

एक एक अक्षर पढ़ै जानै ग्रन्थ बिचार।
पैंड पैंड हू चलत जो पहुँचै कोस हजार॥

भावार्थ – जिस प्रकार एक-एक डग चलकर ही हजार कोस (कोस दूरी की एक माप है, जो प्रायः दो मील का माना जाता है।) की दूरी पार कर गंतव्य तक पहुँचा जा सकता है। उसी प्रकार विद्याधन एक दिन में अचानक अर्जित नहीं किया जा सकता। यह कठोर तपस्या एवं सतत परिश्रम से ही प्राप्य है। दृढ़ लगन, धैर्य और सतत अभ्यास के साथ एक-एक अक्षर पढ़ने वाला व्यक्ति एक दिन तत्त्वार्थनिर्णय विचार करने में समर्थ हो जाता है।

(11)

कछु कहि नीच न छेड़ियै भलो न वाकौ संग।
पाथर डारे कीच मैं उछरि बिगारै अंग॥

भावार्थ – कुत्सित मानसिकता वाले दुर्जन लोगों का न तो संग करना हितकारी है और न ही उनसे शत्रुता गाँठना ही समझदारी है। कीचड़ में पत्थर फेंकने पर कीचड़ की मलिनता में कोई सुधार नहीं होता प्रत्युत उसके छींटे पलट कर पत्थर फेंकने वाले व्यक्ति की स्वच्छता को ही मलिन कर देते हैं।

(12)

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान॥

भावार्थ – सतत अभ्यास करने से मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान हो जाता है। जल खींचने के लिए पात्र में बँधी कोमल रस्सी भी अपनी निरन्तर रगड़ से कुएँ की शिला पर निशान बना देती है।

(13)

करै बुराई सुख चहै कैसैं पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को आम कहाँ ते होइ॥

भावार्थ – बुरे कर्म का परिणाम पीड़ादायक ही होता है। मदार का पौधा लगाने पर आम का वृक्ष कैसे पनप सकता है !

(14)

कहा भयौ जो धन भयौ गुन तैं आदर होइ।
कोटि दोइ धारी धनुष गुन बिन गहत न कोइ॥

भावार्थ – गुण के अभाव में कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। धनवान होने मात्र से कोई व्यक्ति सम्मान का अधिकारी नहीं हो जाता, गुणवान होने से ही व्यक्ति को आदर प्राप्त होता है। चाहे दो करोड़ धनुर्धारी सैनिकों का समूह ही क्यों न उपलब्ध हो, बिना प्रत्यंचा का धनुष कोई सैनिक ग्रहण नहीं स्वीकार करता।

(15)

कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात॥

भावार्थ – कुलीन सुपुत्र की पहचान बाल्यकाल में ही उसके हाव-भाव, आचार-विचार आदि शुभ लक्षणों और शारीरिक गतिविधियों को देखकर हो जाती है। पौधे के पत्तों की स्निग्धता और तरुणाई ही उसके वृक्ष होने के लक्षणों का रहस्य उद्घाटित कर देती है।

(16)

क्यों कीजै ऐसौ जतन जातैं काज न होय।
परबत पै खोदै कुआँ कैसैं निकसै तोय॥

भावार्थ – निरर्थक परिश्रम करना व्यर्थ है। जिन कार्यों का सम्पन्न नहीं होना या सम्पन्न होने पर कोई परिणाम नहीं आना निश्चित है, उन कार्यों को करने का प्रयत्न शक्ति और समय का अपव्यय है। क्या पर्वत पर कुआँ खोदने से उसमें पानी निकलना सम्भव है !

(17)

कारज धीरै होतु है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै केतक सींचौ नीर॥

भावार्थ – कोई भी कार्य अपने श्रेष्ठतम स्वरूप में सम्पन्न होने के लिए एक निश्चित समयावधि की अपेक्षा करता है। शीघ्र परिणाम न आने के कारण अधीर होना और कार्य होने की गति को कोसना, विवेकपूर्ण नहीं होता। बहुत अधिक मात्रा में जल सींचने से वृक्ष पर समय से पहले फल नहीं लद जाते। एक निश्चित प्रक्रिया से गुजरकर और तय समयावधि व्यतीत होने पर ही फल-फूल विकसित होते हैं।

(18)

जासों निबहै जीविका करिए सो अभ्यास।
वेस्या पालै शील तौ कैसैं पूरे आस॥

भावार्थ – कोई कार्य छोटा नहीं होता। जीवन-निर्वाह के लिए अपने गुण, शक्ति, सामर्थ्य के अनुसार जिसने जिस आजीविका का चयन किया है उसे अपने कर्त्तव्य को पूरी निष्ठा के साथ निभाना चाहिये। अन्य के साथ तुलना करके स्वयं के कर्म को हेय नहीं समझना चाहिये। गणिका यदि शील और लज्जा धारण करने लगे तो उसकी आशा कैसे पूर्ण होगी! जीविका-निर्वाह के लिए उसे शील-संकोच का परित्याग करना ही उचित है।

(19)

जिहिं देखैं लांछन लगै तासों दृष्टि न जोर।
ज्यौं कोऊ चितवैं नहीं चौथ चंद की ओर॥

भावार्थ – ऐसे व्यक्तियों की ओर देखना भी नहीं चाहिये जिनकी ओर देखने मात्र से लांछन लगता है। चौथ के चाँद के लिए प्रसिद्ध है कि भाद्रशुक्ल चतुर्थी का चन्द्रमा यदि कोई भूले से भी देख ले तो उसे झूठा कलंक लगता है। दुर्जनों की संगति न करने में ही भलाई है।

(20)

जैसो बंधन प्रेम कौ तौ सौ बंधन और।
काठहिं भेदै कमल कौं छेद न निकरै भौंर॥

भावार्थ – प्रेम की रीति अनोखी है। प्रेम-पाश में बँधने के बाद प्रियतम के बन्धन से मुक्त होने की अभीप्सा नहीं रहती। जो भ्रमर कठोर लकड़ी भेदने में समर्थ है, वह प्रेम-रस का पान करने के लिए कमल की पंखुड़ियों में स्वेच्छा से कैद हो जाता है और उसी बन्धन में बँधा रहकर निज प्राणों का उत्सर्ग कर देता है।

(21)

जो जाकौ गुन जानहीं सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी लेत॥

भावार्थ – संसार में अच्छी-बुरी दोनों प्रकार की वस्तुएँ सुलभ हैं। जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है वह तदनुरूप वस्तु को ही ग्रहण करता है। कोयल की रुचि आम में होती है जबकि कौआ नीम की निबौली में ही सुख मानता है।

(22)

जो पहिलै कीजै जतन सो पीछै फलदाय।
आग लगे खोदै कुँवा कैसे आग बुझाय॥

भावार्थ – समय और स्थितियाँ सदैव एक समान नहीं रहतीं। इसी से ज्ञानवान मनुष्य केवल वर्तमान में नहीं जीते। बीते समय के अनुभव को ध्यान में रखते हुए वे भविष्य के प्रति भी सावधान रहते हैं। भविष्य में सहज संभाव्य विपदाओं के प्रति आशंकित रहते हुए उनसे जूझने के साधन जुटाने हेतु वे पहले से ही प्रयत्नशील होते हैं। यदि आग लगने पर कुआँ खोदने का कार्य प्रारम्भ किया जाय तो उस आग को कैसे बुझाया जा सकता है!

(23)

जो सब ही कौ देत है दाता कहियै सोइ।
जलधर बरषत सम विषम थल न विचारत कोइ॥

भावार्थ – यह मेरा है, वह पराया है – ऐसी ओछी सोच तो छोटे चित्त वाले मनुष्यों की होती है। उदार हृदय वालों के लिए तो सभी प्राणी अपने हैं। ऐसे उदार हृदय वाले धन, पद, सुख और अवसर प्रदान करते समय अपने-पराये का विचार नहीं करते। कृष्णवर्णी जलयुक्त मेघ बरसते समय मैदान-पहाड़ आदि स्थलों का भेद विचार नहीं करते।

(24)

दान दीन कौं दीजियै मिटै दरिद की पीर।
औषध ताकौ दीजियै जाके रोग शरीर॥

भावार्थ – धर्म-पुण्य के नाम पर जिन लोगों ने दान-दक्षिणा को ही अपनी आजीविका का साधन बना लिया है ऐसे लोगों को धन-धान्य देना दान नहीं कहा जा सकता। इसकी अपेक्षा निर्धन, अभावग्रस्त प्राणियों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग करना ही वास्तविक दान है। औषधि और उपचार की आवश्यकता रोगी को होती है।

(25)

दीवौ अवसर कौ भलौ जासौं सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम॥

भावार्थ – अवसर और आवश्यकता के समय किया गया सहयोग ही उपयोगी होता है। खेती सूखने के बाद बरसने वाले बादल और उनका जल भला किस काम का !

(26)

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता कैसैं हू सुख देत।
धोएहू सौ बेर के काजर होए न सेत॥

भावार्थ – यह अनुभूत सत्य है कि प्राणी अपना स्वभाव कभी नहीं त्यागता। दुष्टता करना दुष्ट व्यक्ति का मूलभूत स्वभाव है। वह किसी भी स्थिति में इसे त्याग नहीं कर सकता। सज्जन व्यक्ति दुष्ट की प्रवृत्ति परिवर्तित करने के लिए लाख प्रयत्न कर लें, उस पर करोड़ों उपकार कर दें, अपनी क्षमता से बढ़कर उसकी हर सम्भव सहायता कर दें, तब भी दुष्ट व्यक्ति अवसर आने पर उन्हीं सज्जन के साथ कपट और क्रूरता किए बिना नहीं रहता। काजल को सौ बार धोने पर भी वह काला ही रहता है, कभी श्वेत नहीं हो सकता।

(27)

दुष्ट निकट बसिए नहीं बस न कीजिए बात।
कदली बेर प्रसंग तैं छिदै कंटकन पात॥

भावार्थ – दुष्ट व्यक्तियों का संग ही नहीं, उनसे बातचीत का व्यवहार भी हानिकारक है। बेर के वृक्ष का साथ पाकर केले के पेड़ को ही नुकसान होता है। बेर की कंटीली झाड़ियाँ केले के कोमल पत्तों को बेध देती हैं।

(28)

नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मैं रस सिंगार न सुहात॥

भावार्थ – चाहे कितनी ही चामत्कारिक अथवा विनोदपूर्ण उक्ति क्यों न हो, अवसर विशेष के सन्दर्भ में प्रकट करने पर ही उसका महत्त्व होता है, असम्बन्धित अवसर पर उद्धृत करने पर उसका कोई महत्त्व नहीं होता। युद्ध वर्णन के प्रसंग में शृंगारपूर्ण उक्तियाँ लुभावनी नहीं लगतीं।

(29)

पंडित जन कौ स्रम मरम जानत जे मतिधीर।
कबहूँ बाँझ न जानई तन प्रसूत की पीर॥

भावार्थ – विद्यावान मनुष्य द्वारा विद्यार्जन हेतु किए गए परिश्रम को एक विद्वान व्यक्ति ही समझ सकता है। प्रसूता की पीड़ा को वंध्या स्त्री महसूस नहीं कर सकती।

(30)

पर घर कबहुँ न जाइयै गए घटत है जोति।
रबि-मंडल में जाति ससि छीन कला छबि होति॥

भावार्थ – पराये घर जाने पर आत्मसम्मान में कमी आती ही है। सूर्य चन्द्रमा का मित्र है, चन्द्रमा को अपने प्रकाश से आलोकित कर वह निरन्तर मित्र-धर्म का पालन करता है तथापि जब-जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है तब-तब उसकी कला का सौन्दर्य क्षीण होता रहता है।

(31)

पीछे कारज कीजियै पहिलै जतन बिचार।
बड़े कहत हैं बाँधियै पानी पहिले बार॥

भावार्थ – कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से पहले उसके सकारात्मक परिणामों को देखने के साथ ही उसके दुष्प्रभावों और प्रतिक्रियाओं पर प्रयत्नपूर्वक विचार कर योजना बना लेनी चाहिये। विवेकवान मनुष्य वर्षा से पहले पाळ बाँध लेते हैं।

(32)

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय बिचारी।
सब को मन हरषित करै ज्यौं विवाह मैं गारि ॥

भावार्थ – बहुत अधिक विद्वतापूर्ण नहीं होने पर भी अवसर विशेष से सम्बद्ध बात सामान्य होने पर भी प्रभावकारी होती है। गाली सुनना कर्णकटु और अप्रिय होता है किन्तु वही गालियाँ विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में समधन के मुख से सुनना सुखद और आनन्ददायी प्रतीत होता है।

(33)

फेर न ह्वै हैं कपट सों जो कीजै ब्यौपार।
जैसैं हांडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥

भावार्थ – कपटपूर्ण व्यवहार करके एक बार ही छल किया जा सकता है। काठ की हाँडी चूल्हे पर दूसरी बार नहीं चढ़ती।

(34)

बात कहन की रीति मैं है अंतर अधिकाय।
एक बचन तैं रिस बढ़ै, एक बचन तैं जाय ॥

भावार्थ – वर्ण वही हैं, शब्द वही हैं, वाक्य वही है, उन्हें उच्चारित करने वाला मुख भी वही है किन्तु उस बात को कहने का भाव, तरीका या रीति भिन्न-भिन्न हो सकती है। भाव-परिवर्तन से वही वचन क्रोध उपजाने का कारक बन जाता है जबकि उचित रीति से कहे जाने पर वही वचन भड़के हुए क्रोध का शमन कर देता है।

(35)

बिद्या धन उद्यम बिना कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाए ना मिले ज्यौं पंखा की पौन ॥

भावार्थ – संसार के सारे सुख, धन-सम्पत्ति, पद, मान-बड़ाई, शरीर, स्वास्थ्य, बल, सच्चा मित्र, सत्संगति सुन्दर-सुशील स्त्री और गुणवान सुपुत्र चाहे प्रारब्धवश बिना प्रयास के सहजता से मिल जाएँ किन्तु विद्याधन बिना कठोर तपस्या और सतत उद्यम के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(36)

बहुतन कौं न बिरोधियै निबल जानि बलवान।
मिल भखि जाँहिं पिपीलका नागहि नग के मान॥

भावार्थ – शत्रुसैनिक निर्बल दिखाई देने पर भी यदि संख्या में बहुत अधिक हों तो उन्हें बलवान ही जानना चाहिये। बहुत अधिक संख्या में होने पर चींटी जैसा छोटा जीव भी विशाल हाथी को पहाड़ के पत्थर समान खोखला कर भक्षण कर लेता है।

(37)

बुरे लगत सिख के बचन हिए बिचारौ आप।
करुवे भेखज बिन पियै मिटै न तन कौ ताप॥

भावार्थ – शिक्षाप्रद उपदेश और सीख की बातें सुनना भला किसे अच्छा लगता है! किन्तु यह भी विचार लेना चाहिये कि कड़वी औषधि का पान किये बिना शरीर का ज्वर मिटता नहीं।

(38)

भली करत लागत बिलम बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगैं ढाहत लगति न बार॥

भावार्थ – भलाई के कार्य करने में अनेक व्यवधान उपस्थित होते हैं जबकि अनिष्टकारी कर्म विचार आने के साथ ही घटित किए जा सकते हैं। भवन-निर्माण में दीर्घकाल व्यतीत होता है किन्तु निर्मित भवन को ढहाने में क्षणभर भी नहीं लगता।

(39)

भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परतु हैं काक पिक ऋतु बसन्त के माहिं॥

भावार्थ – जब तक मौन होकर बैठे रहें तब तक सज्जन-दुर्जन, परोपकारी-लोभी, सरल-कपटी, विद्वान-मूर्ख सब एक-से प्रतीत होते हैं, उनमें भेद कर पाना कठिन होता है। समय आने पर वसन्त ऋतु में मुँह खोलकर ध्वनि-उच्चार करने पर ही कोयल और काग की पहचान हो पाती है।

(40)

भाग-हीन कौं न मिलै भली बस्तु कौ भोग।
दाख पके मुख पाख कौ होत काग को रोग॥

भावार्थ – संसार में भले और बुरे दोनों प्रकार के लोग, परिवेश, वस्तुएँ और पदार्थ सदैव विद्यमान हैं किन्तु दुर्भाग्यशाली व्यक्ति को अच्छी वस्तुओं का भोग-सुख नहीं मिलता। निंबोली के मीठे होने की ऋतु में काग को मुखपाक (मुँह में छोटे-छोटे घाव हो जाना) रोग हो जाता है।

(41)

मधुर वचन तैं जात मिट उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटै जैसैं दूध उफान॥

भावार्थ – अपनी किसी भूल-चूक, गलती या अभद्रता के कारण पर सज्जन व्यक्ति यदि नाराज़ हो जाएँ तो धीमी-मृदु वाणी में उनसे क्षमा माँग लेना ही उन्हें पुनः प्रसन्न करने का उचित उपाय है। उफनते दूध पर शीतल जल की ज़रा सी बूँदें पड़ते ही उसका सारा उफान मिट जाता है।

(42)

मूरख कौं हित के बचन सुनि उपजतु है कोप।
साँपहि दूध पिवाइयै वाके मुख विष ओप॥

भावार्थ – मूर्ख व्यक्ति अपने हित की बात सुनकर भी क्रोधित हो उठता है। सुपात्र ही ज्ञान पाने का अधिकारी है। कुपात्र प्राप्त-ज्ञान का दुरुपयोग करता है। विष-वमन और दंश सर्प की जन्मजात प्रवृत्ति है। अमृततुल्य दुध-पान कराने पर भी वह दयालु और निर्मल चित्त वाला नहीं हो जाता। तब भी उसके मुख पर विष की तीक्ष्णता और भयावहता बनी रहती है।

(43)

या जग की बिपरीति गति समझ देखि सुभाव।
कहैं जनार्दन कृष्ण कौं हर कौ शंकर नाँव॥

भावार्थ – संसार में भले व्यक्ति को उसकी भलाई के लिए प्रशंसा और पुरस्कार नहीं मिलता। सामान्यतः तो ठीक इसके विपरीत व्यवहार देखने को मिलता है। यहाँ कृष्ण को जनार्दन (लोगों को कष्ट पहुँचाने वाला, दुःखदायी) और शंकर को हर (हरण करने वाला, छीनने या लूटने वाला, मिटाने वाला, न रहने देने वाला, वध करने वाला, नाश करने वाला, मारने वाला, विभाजक, बाँटने वाला) कहा

जाता है। किन्तु संसार की इस उलटी रीति को देखकर दुखी होने की अपेक्षा उसके स्वभाव को समझने का प्रयास करना चाहिये तभी मान-अपमान से निर्लिप्त रहकर कर्त्तव्य कर्म में प्रवृत्ति बनी रह सकती है।

(44)

रोस मिटै कैसै कहत रिस उपजावन बात।
ईंधन डारै आग मैं कैसैं आग बुझात॥

भावार्थ – सार्थक और सकारात्मक उपाय करने पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। नाराज़ स्वजन का क्रोध शान्त करने के लिए उनके साथ मधुर, शान्त और विनयपूर्ण वाणी में वार्ता करनी चाहिये, कठोर और उलाहने भरे वचन बोलने से तो उनका क्रोध और अधिक भड़क जाता है। क्या आग को बुझाने के लिए उसमें लकड़ी, तेल और ज्वलनशील पदार्थ डालने चाहिये !

(45)

विद्या बिन न बिराजहीं जदपि सरूप कुलीन।
ज्यौं सोभा पावै नहीं टेसू बास बिहीन॥

भावार्थ – उच्च कुल में जन्मा और अत्यधिक रूपवान होने पर भी विद्याहीन मूर्ख मनुष्य गुणीजनों की सभा में बैठने का अधिकारी नहीं हो पाता। जिस प्रकार सुगन्धरहित पलाश (ढाक, टेसू) का पुष्प अत्यधिक सुन्दर और चटक रंग का होने पर भी न तो कण्ठहार में गूँथा जाता है, और न ही सुन्दर रूपवती स्त्रियों की केशराशि का सान्निध्य प्राप्त कर पाता है।

(46)

सब देखै पै आपुनौ दोष न देखै कोइ।
करै उजेरौ दीप पै तरे अँधेरौ होइ॥

भावार्थ – यह मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति है कि उसे अपने सिवाय अन्य सभी दोषयुक्त दिखाई देते हैं। दीपक अपने प्रकाश से आस-पास के समूचे क्षेत्र का रहस्य प्रकट कर देता है किन्तु अपने तल को प्रकाशित नहीं करता।

(47)

सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहिं देत बुझाय॥

भावार्थ – यह अनन्त काल से प्रचलित रीति रही है कि निर्बल की कोई सहायता नहीं करता बल्कि सभी उसका शोषण करते हैं। दूसरी ओर बिना अपेक्षा के भी सबल की सहायता के लिए सभी तत्पर रहते हैं। वायु अग्नि की विकरालता को बढ़ाने में सहायक बनती है, जबकि वही वायु टिमटिमाते दीपक को अपने झोंके से बुझा देती है।

(48)

सरसुति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचे त्यौं-त्यौं बढ़ै बिन खरचै घटि जात॥

भावार्थ – धन की देवी लक्ष्मी और ज्ञान की देवी सरस्वती के भण्डार की यह बड़ी विरोधाभासी प्रवृत्ति है कि संचित धन-सम्पत्ति व्यय करने पर क्रमशः घटती जाती है किन्तु ज्ञान बाँटने से निरन्तर बढ़ता रहता है। दूसरी ओर निरन्तर संग्रह करने से धन-सम्पत्ति क्रमशः बढ़ती जाती है किन्तु मौन होकर बैठने और बिना अभ्यास के अर्जित ज्ञान नष्ट हो जाता है।

(49)

स्रम ही तैं सब मिलत है बिन स्रम मिलै न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यौ क्यौं हू निकरै नाहिं॥

भावार्थ – उद्यम से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं, केवल मनोरथ करने से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। पात्र में जमे घृत को निकालने के लिए भी उँगली टेढ़ी करने भर का परिश्रम तो करना ही पड़ता है।

(50)

स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिं।
जैसे पंछी सरस तरु निरस भए उड़ि जाहिं॥

भावार्थ – संसार में सभी सम्बन्ध स्वार्थाधारित हैं। जो यह सोचते हैं कि मेरे स्वजन, सगे-सम्बन्धी, मित्र और परिचित मुझसे निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, वे बड़े भ्रम में जीते हैं। यह भ्रम अभावग्रस्त स्थिति में ही दूर हो पाता है। जीते-जी बहुत आत्मीयता जताने वाले परिजन भी मृत देह को घर से अतिशीघ्र विदा करना चाहते हैं। कभी वृक्ष की फलदार, सरस डालियों पर आनन्दित हो कलरव करने वाले पक्षी भी उसके फलहीन, रसहीन और पत्रहीन होने पर उसका साथ छोड़ उड़ जाते हैं।

(51)

हीन अकेलौ ही भलौ मिले भले नहिं दोय।
जैसैं पावक पवन मिलि बिफरै हाथ न होय॥

भावार्थ – एक से अधिक दुष्ट मिलकर अराजकता और अशान्ति का वातावरण-निर्मित कर देते हैं। इसलिए कुशल शासन की नीति तो यही है कि दुष्टों को कभी एकजुट न होने दे। अग्नि जब तक पवन के संसर्ग में नहीं आती तब तक नियन्त्रणपूर्वक उसका सदुपयोग किया जा सकता है किन्तु वायु का साथ मिलने पर वही अग्नि विप्लव करने को उद्यत हो जाती है।

(52)

होत अधिक गुन निबल पै उपजत बैर निदान।
मृग मृगमद चमरी चमर लेत दुष्ट हत प्रान॥

भावार्थ – निर्बल व्यक्ति में विशिष्ट गुणों का होना (यथा – अबला स्त्री का रूपवती होना, कमजोर व्यक्ति के पास धन होना) ही उनके लिए अनिष्टकारी परिस्थितियाँ और शत्रु उत्पन्न करने का कारण बनता है। दुष्ट व्याध मृगमद (कस्तूरी) और सुन्दर-बहुमूल्य खाल (चमड़ा) हासिल करने के लिए निरीह मूक प्राणी हिरन के प्राण हर लेता है।

(53)

होय शुद्ध मिटि कलुषता सत संगति कौ पाय।
जैसैं पारस को परसि लौह कनक ह्वै जाय॥

भावार्थ – पारस का स्पर्श पाकर लोहा भी स्वर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे ही सज्जनों की निरन्तर संगति करने से चित्त विषय-विकारों की कल्मषता से रहित हो जाता है। वहाँ अहिंसा, दया, शुचिता, मैत्री जैसे सदाचार और परोपकार की भावना का उद्रेक हो जाता है। हृदय निर्मल होने से वहाँ आत्मज्ञान का बोध और भक्ति-भाव का प्रस्फुटन होने लगता है।

❖❖❖

घाघ

कहावतें

(1)

बनिय क सखरच ठकुर क हीन।
बइद क पूत व्याधि नहिं चीन॥
पंडित चुपचुप बेसवा मइल।
कहैं घाघ पाँचो घर गइल॥

शब्दार्थ – सखरच = शाहखर्च। बेसवा = वेश्या।

भावार्थ – बनिये का लड़का शाहखर्च (अपव्ययी) हो; ठाकुर का लड़का तेजहीन हो; वैद्य का लड़का रोग न पहचानता हो; पण्डित चुप-चुप (अल्पभाषी) हो; और वैश्या मैली हो; घाघ कहते हैं कि इन पाँचों का घर नष्ट हुआ समझो।

(2)

भुइयाँ खेड़े हर ह्वै चार।
घर होय गिहथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जड़हन का भात।
गागल निबुआ औ विउ तात॥
खाँड दही जौ घर में होय।
बाँके नैन परोसै जोय॥
कहैं घाघ तब सबही झूठा।
उहाँ छोड़ि इहँवै बैकूँठा॥

शब्दार्थ – खेड़े = खेत। गिहथिन = गृह-कार्य में दक्ष स्त्री। तात = गरम। जोय = स्त्री।

भावार्थ – खेत गाँव के पास हो, चार हल की खेती होती हो; घर में गृहस्थी के धंधे में निपुण स्त्री हो; दूध देने वाली गाय हो; अरहर की दाल और जड़हन (जाड़े में पैदा होने वाला चावल) का भात, ख़ूब रसदार नीबू और गरम-गरम घी खाने को मिले; घर ही में शक्कर और दही मिल जाया करे; सुन्दर कटाक्ष करती हुई स्त्री भोजन परोसे; तब घाघ कहते हैं कि बैकुण्ठ पृथिवी ही पर है, और सब झूठाहै।

(3)

नसकट पनही बतकट जोय।
जो पहिलौंठी बिटिया होय॥
पातरि कृपी बौरहा भाय।
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय॥

शब्दार्थ – पनही = जूता। पातरि = हलकी, कमज़ोर। बौरहा = बावला।

भावार्थ – घाघ कहते हैं – नस काटने वाली जूती, बात काटने वाली स्त्री, पहली सन्तान कन्या, कमज़ोर खेती और बावला भाई, इनका दुःख कहाँ समा सकता है ?

(4)

मुये चाम से चाम कटावै
भुईं सँकरी माँ सोवै।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा
उढ़रि गये पर रोवै॥

शब्दार्थ – उढ़रना = उद्धरण; पर पुरुष के साथ जो स्त्री भाग जाती है, उसे उढ़री कहते हैं।

भावार्थ – जो मरे हुए चमड़े से चमड़ा कटाता है अर्थात् सँकरा जूता पहनता है; जो ज़मीन पर भी सँकरी जगह में सोता है और जो किसी के साथ विषयाशक्त होकर घर छोड़कर भाग जाता है और फिर रोता है, घाघ कहते हैं, ये तीनों मूर्ख हैं।

(5)

सुंथना पहिरे हर जोतै
औ पौला पहिरि निरावै।
घाघ कहैं ये तीनों भकुवा
सिर बोझा औ गावै॥

शब्दार्थ – पौला = एक प्रकार का खड़ाऊँ , जिसमें खूँटी के बदले रस्सी लगाई जाती है। किसान लोग प्रायः पौला ही पहनते हैं। भकुवा = भोला-भाला; मूर्ख।

भावार्थ – जो सुथना (पाजामा) पहनकर हल जोतता है; जो पौला पहनकर निराता (खेत में से घास निकालता) है; और जो सिर पर बोझा लिये हुए भी गाता चलता है, घाघ कहते हैं ये तीनों मूर्ख हैं।

(6)

उधार काढ़ि ब्यौहार चलावै
छप्पर डारै तारो।
सारे के सँग बहिनी पठवै
तीनिउ का मुँह कारो॥

शब्दार्थ – ब्यौहार = योहर, सूद पर रुपया उधार देना। तारो = ताला।

भावार्थ – जो उधार लेकर क़र्ज़ देता है; जो छप्पर के घर में ताला लगाता है और जो साले के साथ बहन को भेजता है, घाघ कहते हैं, इन तीनों का मुँह काला होता है।

(7)

आलस नींद किसानै नासै
चोरै नासै खाँसी।
अँखिया लीबर बेसवै नासै
बाबै नासै दासी॥

शब्दार्थ – लीबर = कीचड़। बेसवा = वेश्या। बाबा = साधू।

भावार्थ – आलस्य और नींद किसान का, खाँसी चोर का, कीचड़ वाली आँखें वेश्या का और दासी साधू का नाश करती है।

(8)

फूटे से बहि जातु हैं
ढोल गँवार अँगार।
फूटे से बनि जातु हैं
फूट कपास अनार॥

भावार्थ – ढोल, गँवार और अँगारा, ये तीनों फूटने से नष्ट हो जाते हैं। पर फूट (ककड़ी), कपास और अनार फूटने से बन जाते हैं। अर्थात् मूल्यवान् हो जाते हैं।

(9)

बाध, बिया, बेकहल, बनिक,
बारी, बेटा, बैल।
ब्योहर, बढ़ई, बन, बबुर,
बात, सुनो यह छैल॥
जो बकार बारह बसैं
सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा
आप रहै अलमस्त॥

शब्दार्थ – बाध = मूँज को कूटकर उसके रेशे से जो रस्सी बनाई जाती है, उसे बाध कहते हैं।

भावार्थ – बाध (जिससे खाट बुनी जाती है), बीज, बेकहल (ढाँक की जड़ की छाल), बनिया, बारी (फुलवाड़ी), बेटा, बैल, ब्यौहर (सूद पर उधार देना), बढ़ई, बन या कपास, बबूल और बात, ये बारह बकार जिसके पास हों, वही पूरा गृहस्थ है। वह दूसरों को सदा सुख देगा और स्वयं भी निश्चिन्त रहेगा।

(10)

गया पेड़ जब बकुला बैठा।
गया गेह जब मुड़िया पैठा॥
गया राज जहँ राजा लोभी।
गया खेत जहँ जामी गोभी॥

शब्दार्थ – मुड़िया = वह साधु जो सिर मुड़ाये रखता है। राजपूताने में जैन साधु मुड़िया कहलाते हैं। बकुला बैठा = बगले की बीट पेड़ के लिये हानिकारक बताई जाती है। जामी गोभी = गोभी के जमने से खेत की पैदावार बहुत कम हो जाती है।

भावार्थ – बगले के बैठने से पेड़ का नाश हो जाता है। मुड़िया (संन्यासी) जिस घर में आता-जाता है, वह घर नष्ट हो जाता है। राजा लोभी हो तो उसका राज नष्ट हो जाता है और गोभी (एक प्रकार की घास) जमने से खेत नष्ट हो जाता है।

(11)

घर घोड़ा पैदल चलै
तीर चलावै बीन।
थाती धरै दमाद घर
जग में भकुआ तीन॥

शब्दार्थ – बीन = उठाकर। (बीन-बीन कर तीर चलानेवाला दिन भर दौड़ता ही रहेगा।)

भावार्थ – संसार में तीन मूर्ख हैं– एक तो वह, जो घर में घोड़ा होते हुए भी पैदल चलता है; दूसरा वह जो बीन-बीनकर तीर चलाता है; और तीसरा वह जो दामाद के घर में थाती (धरोहर) रखता है।

(12)

खेती पाती बीनती
औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ सँवारिये
लाख लोग हों संग॥

भावार्थ – खेती करना, चिट्ठी लिखना, बिनती करना और घोड़े की तंग कसना अपने ही हाथ से चाहिये। यदि लाख आदमी भी साथ हों, तब भी स्वयं करना चाहिये।

(13)

बगड़ बिराने जो रहे
मानै त्रिया की सीख।
तीनों यों हीं जायँगे
पाही बोवै ईख॥

भावार्थ – जो दूसरे के घर में रहता है, जो स्त्री के कहने पर चलता है और जो दूसरे गाँव में ईख बोता है, ये तीनों नष्ट हो जायेंगे।

(14)

सावन सोये ससुर घर
भादों खाये पूवा।
खेत-खेत में पूँछत डोलैं
तोहरें केतिक हुआ॥

भावार्थ – सुस्त और बेपरवाह किसान सावन में तो ससुराल में रहा, भादों में पूवा खाता रहा । अब दूसरों के खेत में पूछता फिरता है कि तुम्हारे कितनी पैदावार हुई ?

(15)

चैते गुड़ बैसाखे तेल।
जेठ क पंथ असाढ़ क बेल ॥
सावन साग न भादों दही।
क्वार करेला कातिक मही ॥
अगहन जीरा पूसे धना।
माघे मिश्री फागुन चना ॥

भावार्थ – चैत में गुड़, बैसाख में तेल, जेठ में राह, असाढ़ में बेल, सावन में साग, भादों में दही, क्वार में करेला, कातिक में मट्ठा, अगहन में जीरा, पौष में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन में चना हानिकारक है।

(16)

सावन हरैं भादों चीत।
क्वार मास गुड़ खायउ मीत ॥
कातिक मूली अगहन तेल।
पूस में करै दूध से मेल ॥
माघ मास घिउ खींचरि खाय।
फागुन उठि के प्रात नहाय ॥
चैत मास में नीम बेसहनी।
बैसाखे में खाय जड़हनी ॥
जेठ मास जो दिन में सोवै।
ओकर जर असाढ़ में रोवै ॥

भावार्थ – सावन मास में हरैं, भादों मास में चिरायता, क्वार मास में गुड़, कार्तिक मास में मूली, अगहन मास में तेल, पौष मास में दूध, माघ मास में घी और खिचड़ी, फागुन मास में प्रातःस्नान, चैत मास में नीम का सेवन, वैशाख मास में जड़हन का भात खाना लाभप्रद है। जेठ मास में दिन में सोने वाले व्यक्ति को आषाढ़ में ज्वर नहीं होता और वह स्वस्थ रहता है।

(17)

बूढ़ा बैल बेसाहै
झीना कपड़ा लेय।
आपुन करै नसौनी
दैवै दूषन देय॥

शब्दार्थ – झीना = बारीक। नसौनी = नाश होने का काम।

भावार्थ – जो गृहस्थ बुड्ढा बैल खरीदता है, बारीक कपड़ा लेता है, वह तो अपना नाश आप ही करता है, वह दैव को व्यर्थ ही दोष लगाता है।

(18)

बैल चौंकना जोत में
औ चमकीली नार।
ये बैरी हैं जान के
कुसल करैं करतार॥

भावार्थ – हल में जोतते वक्त चौंकने वाला बैल और चटकीली-मटकीली स्त्री ये दोनों गृहस्थ के प्राण के शत्रु हैं। इनसे ईश्वर ही कुशल करे।

(19)

जोइगर बंसगर बुझगर भाय।
तिरिया सतवँति नीक सुभाय॥
धन पुत हो मन होइ बिचार।
कहैं घाघ ई सुक्ख अपार॥

शब्दार्थ – जोइ = स्त्री।

भावार्थ – स्त्री वाला, वंश वाला, समझदार भाईवाला, अच्छे स्वभाव वाली सतवंती स्त्री वाला तथा धन और पुत्र से युक्त और विचारयुक्त मन वाला होना, घाघ कहते हैं, ये अपार सुख हैं।

(20)

निहपछ राजा मन हो हाथ।
साधु परोसी नीमन साथ॥
हुक्मी पूत धिया सतवार।
तिरिया भाई रखे बिचार॥
कहैं घाघ हम करत बिचार।
बड़े भाग से दे करतार॥

शब्दार्थ – निहपछ = निष्पक्ष। नीमल = पुष्ट, विश्वस्त। सतवार = सच्चरित्रा। धिया = कन्या। तिरिया = स्त्री।

भावार्थ – राजा निष्पक्ष हो, मन वश में हो, पड़ोसी सज्जन हो, सच्चे और विश्वासी आदमियों का साथ हो, पुत्र आज्ञाकारी हो, कन्या सतवाली हो, स्त्री और भाई विचारवान् हों, घाघ कहते हैं कि हम विचार करते हैं कि बड़े भाग्य से भगवान् इन्हें देते हैं।

(21)

ढीठ पतोहु धिया गरियार।
खसम बेपीर न करै बिचार॥
घरे जलावन अन्न न होइ।
घाघ कहैं सो अभागी जोइ॥

शब्दार्थ – गरियार = घमंडी।

भावार्थ – जिसकी पुत्रवधू ढीठ हो, कन्या घमंडी हो, पति निर्दय हो और विचार न करता हो, जिसके घर में पकाने के लिये अन्न न हो, घाघ कहते हैं, वह स्त्री अभागिनी है।

(22)

झिलँगा खटिया बातल देह।
तिरिया लम्पट हाटे गेह॥
बेगा बिगरि कै मुदई मिलन्त।
कहैं घाघ ई बिपति क अन्त॥

शब्दार्थ – झिलँगा = ढीली-ढाली खाट।

भावार्थ – झिलँगा (ढीली-ढाली) खाट, वात-रोग से व्यथित देह, कुलटा स्त्री, बाज़ार में घर और भाई का बिगड़ करके रिपु से मिल जाना, घाघ कहते हैं, यह विपत्ति की हद है।

(23)

पूत न माने आपन डाँट।
भाई लड़ै चहै नित बाँट॥
तिरिया कलही करकस होइ।
नियरा बसल दुहुट सब कोइ॥
मालिक नाहिन करै विचार।
घाघ कहैं ई बिपति अपार॥

भावार्थ – पुत्र अपनी डाँट-डपट नहीं मानता, भाई नित्य झगड़ता रहता है और बँटवारा चाहता है, स्त्री झगड़ालू और कर्कशा है, पास-पड़ोस में सब दुष्ट बसे हुए हैं, मालिक न्याय-अन्याय का विचार नहीं करता; घाघ कहते हैं कि ये अपार विपत्तियाँ हैं।

(24)

परहथ बनिज सँदेसे खेती।
बिन बर देखे ब्याहै बेटी॥
द्वार पराये गाड़ै थाती।
ये चारों मिलि पीटैं छाती॥

भावार्थ – दूसरे के भरोसे व्यापार करने वाला, संदेशा-द्वारा खेती करने वाला और जो बिना वर देखे बेटी का ब्याह करता है तथा जो दूसरे के द्वार पर धरोहर गाड़ता है, ये चारों छाती पीटकर पछताते हैं।

(25)

सधुवै दासी चोरवै खाँसी
प्रेम बिनासै हाँसी।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासे
खायँ जो रोटी बासी॥

भावार्थ – साधु को दासी, चोर को खाँसी और प्रेम को हँसी नष्ट कर देती है। घाघ कहते हैं कि इसी प्रकार जो लोग बासी रोटी खाते हैं, उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

(26)

नीचन से ब्योहार बिसाहा
हँसि के माँगत दम्मा।
आलस नींद निगोड़ी घेरे
घग्घा तीनि निकम्मा॥

भावार्थ – जो नीच आदमियों से लेन-देन करता है, जो दी हुई चीज़ का दाम हँस कर माँगता है और जिसे आलस्य और निगोड़ी नींद घेरे रहती है, घाघ कहते हैं ये तीनों निकम्मे हैं।

(27)

ओछे बैठक ओछे काम।
ओछी बातें आठों जाम॥
घाघ बताये तीनि निकाम।
भूलि न लीजौ इनकौ नाम॥

भावार्थ – जो ओछे आदमियों के साथ बैठता है, जो ओछे काम करता है, और जो रातदिन ओछी बातें करता रहता है। घाघ कहते हैं, ये तीन निकम्मे आदमी हैं। इनका नाम कभी भूल कर भी न लेना चाहिये।

(28)

साँझै से परि रहती खाट।
पड़ी भड़ेहरि बारह बाट॥
घरु आँगन सब घिन घिन होइ।
घग्घा गहिरे देव डबोइ॥

भावार्थ – जो स्त्री शाम ही से खाट पर पड़ रहती है; जिसके घर के बरतन-भाँड़े बारह बाट (तितर-बितर) हुये रहते हैं और जिसका घर और आँगन घिनाता रहता है। घाघ कहते हैं उस स्त्री को गहरे पानी में डुबो देना चाहिये।

(29)

नारि करकसा कट्टर घोर।
हाकिम होइके खाइ अँकोर॥
कपटी मित्र पुत्र है चोर।
घग्घा इनको गहिरे बोर॥

भावार्थ – कर्कशा स्त्री, काटनेवाला घोड़ा, रिश्वतखोर हाकिम, कपटी मित्र और चोर पुत्र, घाघ कहते हैं इनको गहरे पानी में डुबा देना चाहिये।

(30)

ओछो मंत्री राजै नासै
ताल बिनासै काई।
सान साहिबी फूट बिनासै
घग्घा पैर बिवाई॥

भावार्थ – घाघ कहते हैं कि नीच प्रकृति का मन्त्री राजा का, काई तालाब का, फूट मान-मर्यादा का और बिवाई पैर का नाश करती है।

(31)

आठ गाँव का चौधरी
बारह गाँव का राव॥
अपने काम न आय तौ
अपनी ऐसी-तैसी में जाव॥

भावार्थ – आठ गाँव का चौधरी हो या बारह गाँव का राव; पर जो अपने काम न आवे तो वह अपनी ऐसी-तैसी में जाय।

(32)

चोर जुवारी गँठकटा
जार औ नार छिनार।
सौ सौगंधें खायँ जौ
घाघ न करु इतबार॥

भावार्थ – घाघ कहते हैं कि चोर, जुआरी, गंठकटा, जार और छिनाल स्त्री, ये सौ सौगंधें खाँय, तब भी इनका विश्वास न करना चाहिये।

(33)

घर में नारी आँगन सोवै।
रन में चढ़ि के छत्री रोवै॥
रात को सतुवा करै बिआरी।
घाघ मरै तेहि कर महतारी॥

भावार्थ – घाघ कहते हैं कि जिसकी स्त्री घर में हो पर वह आँगन में सोता है। और जो क्षत्रिय रण में चढ़कर रोता है और जो आदमी रात में सतुवा का आहार करता है, इन तीनों की माता को मर जाना चाहिये। ये व्यर्थ ही जन्मे हैं।

(34)

जेकर ऊँचा बैठना
जेकर खेत निचान।
ओकर बैरी का करै
जेकर मीत दिवान॥

भावार्थ – जिस किसान का उठना-बैठना ऊँचे दरजे के आदमियों में होता है, या जिसकी बैठक ऊँची है; और खेत आस-पास की ज़मीन से नीचा है तथा राजा का दीवान जिसका मित्र है, उसका शत्रु क्या कर सकता है ?

(35)

घर की खुनुस औ जर की भूख।
छोट दमाद बराहे ऊख॥
पातर खेती भकुवा भाइ।
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय॥

भावार्थ – घर में रात-दिन की लड़ाई, ज्वर के बाद की भूख, कन्या से छोटा दामाद, सूखती हुई ईख, कमज़ोर खेती और निर्बुद्धि भाई, घाघ कहते हैं कि ये ऐसे दुःख हैं कि कहाँ समायेंगे ?

(36)

काँटा बुरा करील का
औ बदरी का घाम।
सौत बुरी है चून की
और साझे का काम॥

भावार्थ – करील का काँटा, बदली के बाद होनेवाली धूप, आटे की भी सौत और साझे का काम, ये चारों बुरे हैं।

(37)

माघ मास की बादरी
औ कुवार का घाम।
यह दोनों जो कोउ सहै
करै पराया काम॥

भावार्थ – माघ की बदली और कुवार का घाम, ये दोनों बड़े कष्टदायक होते हैं। इन्हें जो सह सके, वही पराया काम कर सकता है।

(38)

सावन घोड़ी भादौं गाय।
माघ मास जो भैंस बिआय॥
कहै घाघ यह साँची बात।
आप मरै कि मलिकै खात॥

भावार्थ – यदि सावन में घोड़ी, भादों में गाय और माघ के महीने में भैंस ब्याये, तो घाघ यह सच्ची बात कहते हैं कि या तो वह स्वयं मर जायेगी या मालिक ही को खा जायेगी।

(39)

धौले भले हैं कापड़े
धौले भले न बार।
आछी काली कामरी
काली भली न नार॥

भावार्थ – सफेद कपड़े अच्छे लगते हैं, पर सफेद बाल अच्छे नहीं लगते। काली कमली अच्छी लगती है, पर काली स्त्री अच्छी नहीं लगती।

(40)

हरहट नारि बास एकबाह।
परुवा बरद सुहुत हरवाह॥
रोगी होइ होइ इकलन्त।
कहैं घाघ ई विपति क अन्त॥

भावार्थ – कर्कशा स्त्री, अकेले बसना, पराया बैल, सुस्त हलवाहा, रोगी होकर अकेले पड़े रहना, घाघ कहते हैं कि इनसे बढ़कर विपत्ति नहीं।

(41)

ताका भैंसा गादर बैल।
नारि कुलच्छनि बालक छैल॥
इनसे बाँचें चातुर जोग।
राज छाड़ि के साधै योग॥

भावार्थ – ताका (जिसकी आँखें दो तरह की हों) भैंसा, गादर (हल में चलते-चलते बैठ जानेवाला) बैल, बुरे लक्षणों वाली स्त्री, और शौकीन बेटे से चतुर लोग बचते रहें। इनकी संगति में यदि राज-सुख हो, तब भी उसे छोड़कर फ़कीरी अच्छी है।

(42)

बिन बैलन खेती करै
बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै
चौदह साख लबार॥

भावार्थ – जो गृहस्थ यह कहता है कि मैं बिना बैलों के खेती करता हूँ; बिना भाइयों की सहायता के दूसरों से झगड़ा करता हूँ और बिना स्त्री के गृहस्थी चलाता हूँ, वह चौदह पुश्तों का झूठा है।

(43)

ढिलढिल बेंट कुदारी।
हँसि के बोलै नारी॥
हँसि के माँगै दामा।
तीनों काम निकामा॥

भावार्थ – कुदाल का बेंट ढीला होना, स्त्री का हँसकर बात करना और हँसकर दाम माँगना ये तीनों काम अच्छे नहीं हैं।

(44)

जाको मारा चाहिये
बिन मारे बिन घाव।
वाको यही बताइये
घुइयाँ पूरी खाव॥

भावार्थ – बिना चोट पहुँचाये हुये किसी को मारना चाहो, तो उसे यह सलाह दो कि वह अरबी की तरकारी और पूरी खाया करे।

(45)

प्रातकाल खटिया ते उठि कै
पिअइ तुरंतै पानी।
कबहूँ घर में बैद न अइहैं
बात घाघ के जानी॥

भावार्थ – प्रातःकाल खाट पर से उठते ही तुरन्त पानी पी लिया करे तो कभी बीमार न हो। यह बात घाघ की अजमायी हुई है।

(46)

जेहि घर साले सारथी
तिरिया की हो सीख।
सावन में बिन हल लवै
तीनों माँगैं भीख॥

भावार्थ – जिस घर में साला गृहस्थी की गाड़ी चलाता हो, अर्थात् साला ही प्रधान हो; जिस घर में स्त्री ही की सलाह चलती हो और सावन में जो किसान बिना हल का हो, वे तीनों भीख माँगेंगे।

(47)

आवत आदर ना दियो,
जात न दीनों हस्त।
ये दोऊ पछतायेंगे,
पाहुन और गृहस्त॥

भावार्थ – आर्द्रा नक्षत्र प्रारम्भ में और हस्त अन्त में न बरसे, तो गृहस्थ पछतायेगा और यदि अतिथि को आते ही सम्मान नहीं दिया और विदा होते समय कुछ धन हाथ में नहीं दिया, तो वह अतिथि पछतायेगा।

(48)

पुरबा में जो पछुवाँ बहै।
हँसि के नार पुरुष से कहै॥
ऊ बरसै ई करै भतार।
घाघ कहैं यह सगुन बिचार॥

भावार्थ – पूर्वा हवा और पछुवाँ हवा यदि एक साथ बहे, और स्त्री पर-पुरुष से हँसकर बातें करे, तो घाघ यह शकुन विचार कर कहते हैं कि वह हवा पानी बरसायेगी और स्त्री दूसरा पति करेगी।

(49)

मेदिन मेवा भइँसि किसान।
मोर पपीहा घोड़ा धान॥
बाढ्यौ मच्छ लता लपटानी।
दस सुखी जब बरसै पानी॥

भावार्थ – पृथ्वी, मेढ़क, भैंस, किसान, मोर, पपीहा, घोड़ा, धान, मछली और लता, ये दस पानी बरसने से सुखी होते हैं।

(50)

छीपा छेड़ी ऊँट कोंहार।
पीलवान और गाड़ीवान॥
आक जवासा बेस्वा बानी।
दस मलीन जब बरसै पानी॥

भावार्थ – रँगरेज, बकरी, ऊँट, कुम्हार, महावत, गाड़ीवान्, मदार, जवासा, वेश्या और बनिया, ये दस पानी बरसने पर दुखी हो जाते हैं।

(51)

अधकचरी बिद्या दहे
राजा दहे अचेत।
ओछे कुल तिरिया दहे
दहे कलर का खेत॥

भावार्थ – अल्पज्ञान वा अल्पज्ञानी, असावधान राजा, ओछे कुल की स्त्री और कपास का खेत (एक बार कपास बोने से खेत बहुत कमज़ोर हो जाता है।) कष्टदायी होता है।

❖❖❖

भड्डरी

वर्षा सम्बन्धी रीति-नीति

कहावतें

(1)

कातिक सुद एकादसी,
बादल बिजुली होय।
तो असाढ़ में भड्डरी,
बरखा चोखी होय॥

भावार्थ – कार्तिक शुक्ला एकादशी को यदि बादल हों और बिजली चमके, तो भड्डरी कहते हैं कि आषाढ़ में निश्चय वर्षा होगी।

(2)

कातिक मावस देखो जोसी।
रबि सनि भौमवार जो होसी॥
स्वाँति नखत अरु आयुष जोगा।
काल पड़ै अरु नासैं लोगा॥

भावार्थ – ज्योतिषी को कार्तिक अमावस्या को देखना चाहिये, यदि उस दिन रविवार, शनिवार और मंगलवार होगा और स्वाती नक्षत्र और आयुष्य योग होगा तो अकाल पड़ेगा और मनुष्यों का नाश होगा।

(3)

पौष मास दसमी दिवस,
बादल चमकै बीज।
तौ बरसै भर भादवो,
साधौ खेलो तीज॥

भावार्थ – पौष बदी दसमी को यदि बादल हों और बिजली चमके, तो भादों भर बरसात होगी। हे सज्जनो ! आनन्द से तीज का त्योहार मनाओ।

(4)

सनि आदित औ मंगल,
पौष अमावस होय।
दुगुनो तिगुनो चौगुनो,
नाज महँगी होय॥

भावार्थ – यदि पौष की अमावस्या को शनिवार, रविवार या मंगल पड़े, तो इसी क्रम से अन्न दोगुना, तिगुना और चौगुना महँगा होगा।

(5)

सोम सुक्र सुरगुरु दिवस,
पौष अमावस होय।
घर घर बजे बधावड़ा,
दुखी न दीखे कोय॥

भावार्थ – यदि पौष की अमावस्या को सोमवार, शुक्रवार या बृहस्पतिवार पड़े, तो घर-घर बधाई बजेगी और कोई दुखी न दिखायी पड़ेगा।

(6)

काहें पंडित पढ़ि पढ़ि मरो।
पूस अमावस की सुधि करो॥
मूल बिसाखा पूरबाषाढ़।
झूरा जान लो बहिरे ठाढ़॥

भावार्थ – हे पंडित ! बहुत पढ़-पढ़कर क्यों जान देते हो ? पौष के अमावस को देखो। यदि उस दिन मूल, विशाखा या पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो, तो समझना कि सूखा घर के बाहर खड़ा है। अर्थात् सूखा पड़ेगा।

(7)

पूस उजेली सप्तमी,
अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो,
अब सुभ होइहै काज॥

भावार्थ – पौष सुदी सप्तमी, अष्टमी और नवमी को यदि बादल हों और गरजे, तो समझना कि सब काम सिद्ध होगा अर्थात् सुकाल होगा।

(8)

माघ अँधेरी सप्तमी
मेह बिज्जु दमकन्त।
मास चारि बरसै सही,
मत सोचै तू कन्त॥

भावार्थ – माघ बदी सप्तमी को यदि बादल हों और बिजली चमके, तो हे स्वामी ! तुम सोच मत करो, चौमासा भर पानी बरसेगा।

(9)

माघ जु परिवार ऊजली,
बादर वायु जु होय।
तेल और सुरही सबै,
दिन दिन महँगो होय॥

भावार्थ – माघ सुदी प्रतिपदा को यदि हवा चलती रहे और बादल भी हों, तो तेल और घी महँगे होते जायेंगे।

(10)

माघ उज्यारी दूज दिन,
बादर बिज्जु समाय।
तो भाखैं यों भड्डरी,
अन्न जु महँगो लाय॥

भावार्थ – माघ सुदी दूज को यदि बादलों में बिजली समाती दिखायी पड़े, तो भड्डरी कहते हैं कि अन्न महँगा होगा।

(11)

माघ उँजेरी पंचमी,
परसै उत्तम बाय।
तो जानो ये भादवौ,
बिन जल कोरौ जाय॥

भावार्थ – माघ सुदी पंचमी को अच्छी हवा चले, तो समझना कि भादौ बिना पानी का सूखा ही जायेगा।

(12)

माघ सत्तमी ऊजली,
बादल मेघ करंत।
तो असाढ़ में भड्डली,
घनो मेघ बरसंत॥

भावार्थ – माघ सुदी सप्तमी को यदि बादल घिर आये, तो भड्डरी कहते हैं कि आषाढ़ में खूब वर्षा होगी।

(13)

माघ सुदी जो सत्तमी,
बिज्जु मेह हिम होय।
चार महीना बरससी,
सोक करौ मति कोय॥

भावार्थ – माघ सुदी सप्तमी को यदि बिजली चमके, पानी बरसे और सरदी बहुत पड़े, तो चौमासे भर पानी बरसेगा; कोई चिन्ता मत करो।

(14)

माघ सुदी जो सत्तमी,
सोमवार दीसन्त।
काल पड़ै राजा लड़ैं,
सगरे नराँ भ्रमन्त॥

भावार्थ – माघ सुदी सप्तमी को यदि सोमवार पड़े, तो अकाल पड़ेगा, राजा लड़ेंगे और सभी मनुष्य चक्कर में पड़े रहेंगें।

(15)

माघ सुदी जो सप्तमी,
भौमवार की होय।
तो भड्डर जोसी कहैं,
नाजु किरानो लोय॥

भावार्थ – यदि माघ सुदी सप्तमी मंगलवार को पड़े, तो अन्न में कीड़े लग जायेंगे।

(16)

माघ सुदी आठैं दिवस,
जो कृतिका रिषि होय।
की फागुन रोळी पड़ै,
की सावन महँगो होइ॥

भावार्थ – माघ सुदी अष्टमी को यदि कृतिका नक्षत्र हो, तो या तो फागुन में कुसमय पड़ेगा या सावन में अन्न महँगा होगा।

(17)

माघ सुदी पून्यो दिवस,
चन्द्र निर्मलो जोय।
पसु बेंचौ कन संग्रहौ,
काल हलाहल होय॥

भावार्थ – माघ सुदी पूर्णिमा को यदि चन्द्रमा स्वच्छ हो, अर्थात् आकाश में बादल न हों, तो हे किसान ! पशुओं को बेंचकर अन्न का संग्रह करो। क्योंकि भयानक अकाल पड़ेगा।

(18)

फागुन बदी सुदूज दिन,
बादर होय न बीज।
बरसै सावन भादवा,
साधौ खेलो तीज॥

भावार्थ – फागुन बदी दूज को यदि बादल हों, पर बिजली न चमके; अथवा न बादल हों न बिजली; तो सावन-भादों दोनों महीनों में वर्षा होगी। हे सज्जनो ! आनन्द से तीज का त्योहार मनाओ।

(19)

मंगलवारी मावसी,
फागुन चैतो जोय।
पशु बेंचौ कन संग्रहो,
अवसि दुकाली होय॥

भावार्थ – फागुन और चैत का अमावस यदि मंगल को पड़े, तो अकाल पड़ेगा। पशुओं को बेंच (बाँट) डालो और अन्न संग्रह करो।

(20)

पाँच मंगरौ फागुनौ,
पौष पाँच सनि होय।
काल पड़ै तब भड्डरी,
बीज बवौ मति कोइ॥

भावार्थ – यदि फागुन के महीने में पाँच मंगल और पौष में पाँच शनिवार पड़े, तो भड्डरी कहते हैं कि अकाल पड़ेगा; कोई बीज मत बोओ।

(21)

होली सूक सनीचरी,
मंगलवारी होय।
चाक चहोड़े मेदिनी,
बिरला जीवै कोय॥

भावार्थ – होली यदि शुक्र, सनीचर या मंगलवार को पड़े, तो पृथ्वी पर भयानक समय उपस्थित होगा। शायद ही कोई जीवे।

(22)

चैत मास दसमी खड़ा,
जो कहुँ कोरा जाइ।
चौमासे भर बादला,
भली भाँति बरसाइ॥

भावार्थ – यदि चैत सुदी दशमी को बादल न हुआ, तो समझना कि चौमासे भर अच्छी वृष्टि होगी।

(23)

चैत पूर्णिमा होइ जो,
सोम गुरौ बुधवार।
घर घर होइ बधावड़ा,
घर घर मंगलचार॥

भावार्थ – चैत्र की पूर्णिमा यदि सोमवार, बृहस्पतिवार और बुधवार को पड़े, तो घर-घर आनन्द की बधाई बजेगी और घर-घर मंगलाचार होगा।

(24)

आद्रा तौ बरसै नहीं,
मृगसिर पौन न जोय।
तौ जानौ ये भड्डरी,
बरखा बूँद न होय॥

भावार्थ – चैत में आर्द्रा में वर्षा नहीं हुई और मृगशिर में हवा न चली, तो भड्डरी कहते हैं कि एक बूँद भी बरसात नहीं होगी।

(25)

बैसाख सुदी प्रथमै दिवस,
बादर बिज्जु करेइ।
दामा बिना बिसाहिजै,
पूरा साख भरेइ॥

भावार्थ – बैशाख शुक्ल प्रतिपदा को यदि बादल हो और बिजली चमके, तो उस वर्ष ऐसी अच्छी पैदावार होगी कि अन्न बिना मोल के बिकेगा।

(26)

अखै तीज तिथि के दिना,
गुरु होवै संजूत।
तो भाखै यों भड्डरी,
निपजै नाज बहूत॥

भावार्थ – बैशाख में अक्षय तृतीया के दिन यदि गुरुवार हो, तो भड्डरी कहते हैं कि अन्न बहुत उपजेगा।

(27)

जेठ बदी दसमी दिना,
जो सनिबासर होइ।
पानी होय न धरनि पर,
बिरला जीवै कोइ॥

भावार्थ – जेठ कृष्ण दशमी को यदि शनिवार पड़े, तो पृथ्वी पर पानी न पड़ेगा अर्थात् वर्षा न होगी और शायद ही कोई जीवित रहे।

(28)

जेठ उज्यारी तीज दिन,
आद्रा रिप बरसन्त।
जोसी भाखै भड्डरी,
दुर्भिछ अवसि करन्त॥

भावार्थ – जेठ सुदी तृतीया को यदि आर्द्रा नक्षत्र बरसे, तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि अवश्य दुर्भिक्ष पड़ेगा।

(29)

नवैं असाढ़े बादलो,
जो गरजै घनघोर।
कहैं भड्डरी जोतिसी,
काल पड़ै चहुँओर॥

भावार्थ – आषाढ़ कृष्ण नौमी को यदि बादल ज़ोर को गरजें तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि चारों ओर अकाल पड़ेगा।

(30)

सुदि असाढ़ में बुध को,
उदै भयो जो देख।
सुक्र अस्त सावन लखो,
महाकाल अवरेख॥

भावार्थ – आषाढ़ शुक्ल में यदि बुध उदय हों और सावन में शुक्र अस्त हों, तो महा अकाल पड़ेगा।

(31)

आसाढ़ी पूनो दिना,
गाज बीज बरसन्त।
नासै लच्छन काल का,
आनँद मानो सन्त॥

भावार्थ – आषाढ़ की पूर्णिमा को यदि बादल गरजे, बरसे और बिजली चमके, तो सुकाल का लक्षण है। ख़ूब आनन्द होगा।

(32)

आगे रवि पीछे चलै,
मंगल जो आसाढ़।
तौ बरसै अनमोल ही,
पृथी अनन्दै बाढ़॥

भावार्थ – आषाढ़ में यदि सूर्य आगे और मंगल पीछे हो, तो पानी ख़ूब बरसेगा और पृथ्वी पर आनन्द बढ़ेगा।

(33)

असाढ़ मास पूनो दिवस,
बादल घेरे चन्द।
तो भड्डर जोसी कहैं,
होवै परम अनन्द॥

भावार्थ – आषाढ़ की पूर्णमासी को यदि चन्द्रमा बादलों से घिरा रहे, तो भड्डरी कहते हैं कि परम आनन्द होगा। अर्थात् वर्षा अच्छी होगी।

(34)

पूरब को घन पच्छिम चलै।
राँड़ बतकही हँसि हँसि करै॥
ऊ बरसै ऊ करै भतार।
भड्डर के मन यही विचार॥

भावार्थ – पूर्व का बादल पश्चिम को जाता हो, विधवा पर-पुरुष से हँस-हँस कर बतलाती हो, तो भड्डरी कहते हैं कि वे बादल बरसेंगे और विधवा दूसरा पति कर लेगी।

(35)

सावन कृष्ण एकादसी,
गर्जि मेघ घहरात।
तुम जाओ पिय मालवै,
हम जाबै गुजरात॥

भावार्थ – सावन बदी एकादशी को यदि बादल गरज-गरज कर घहराता रहे, तो अकाल पड़ेगा। हे स्वामी ! तुम मालवे चले जाना और मैं गुजरात चली जाऊँगी।

(36)

पुरबा बादर पच्छिम जाय।
वासे वृष्टि अधिक बरसाय॥
जो पच्छिम से पूरब जाय।
वर्षा बहुत न्यून हो जाय॥

भावार्थ – पूर्व दिशा से यदि बादल पश्चिम को जायें, तो वृष्टि अधिक होगी। यदि पश्चिम से बादल पूर्व को जायें, तो वर्षा बहुत न्यून होगी।

(37)

सावन सुक्ला सत्तमी,
चन्दा छिटिक करै।
की जल देखौ कूप में,
की कामिनि सीस धरै॥

भावार्थ – सावन सुदी सप्तमी को यदि आकाश निर्मल हो और चन्द्रमा साफ़ उदय हो, तो सूखा पड़ेगा। पानी या तो कुँए में मिलेगा या घड़े में स्त्रियों के सिर पर।

(38)

सावन पहली पंचमी,
जोर की चलै वयार।
तुम जाना पिय मालवा,
हम जाबै पितुसार॥

भावार्थ – सावन बदी पंचमी को यदि ज़ोर की हवा चले, तो हे प्रिय ! तुम मालवे चले जाना, मैं पिता के घर चली जाऊँगी। अर्थात् अकाल पड़ेगा।

(39)

तीतर बरनी बादरी,
रहै गगन पर छाय।
कहै डंक सुनु भड्डरी,
बिन बरसे ना जाय॥

भावार्थ – तीतर के पंख की शक्ल वाली बदली यदि आकाश पर छा जाय, तो डंक कहते हैं कि हे भड्डरी ! सुन, वह बदली बरसे बिना नहीं जायेगी।

(40)

तीतर बरनी बादरी,
बिधवा काजर रेख।
वे बरसैं वे घर करैं,
कहैं भड्डरी देख॥

भावार्थ – तीतर के पंख की तरह बदली हो और विधवा की आँखों में काजल की रेखा हो, तो भड्डरी कहते हैं कि बदली बरसेगी और विधवा दूसरा घर करेगी।

(41)

कलसे पानी गरम है,
चिरियाँ न्हावै धूर।
अंडा लै चींटी चढ़ैं,
तौ बरषा भरपूर॥

भावार्थ – घड़े में पानी गरम जान पड़े, चिड़ियाँ धूल में नहायें और चींटी अंडे लेकर चलें, तो भरपूर वर्षा होगी।

(42)

सावन पहली पंचमी,
गरभे ऊदे भान।
बरखा होगी अति घनी,
ऊँचे जानो धान॥

भावार्थ – सावन बदी पंचमी को यदि सूर्य बादलों में से निकले, तो बड़ी वर्षा होगी और धान की फ़सल अच्छी होगी।

(43)

भोर समै डरडम्बरा,
रात उजेरी होय।
दुपहरिया सूरज तपै
दुरभिछ तेऊ जोय॥

भावार्थ – सबेरे आकाश में बादल छाये हों, रात में आकाश साफ़ रहे और दोपहर में सूर्य तपे, तो दुर्भिक्ष पड़ेगा।

(44)

सुक्करवारी बादरी,
रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी,
बिन बरसे नहिं जाय॥

भावार्थ – शुक्रवार के दिन बदली हो और शनैश्चरवार को छायी रहे, तो भड्डरी कहते हैं कि बिना बरसे वह नहीं जायेगी।

(45)

रात्यो बोलै कागला,
दिन में बोलै स्याल।
तो यों भाखै भड्डरी,
निहचै परै अकाल॥

भावार्थ – रात में यदि कौवे बोलें और दिन में सियार; तो भड्डरी कहते हैं कि अकाल निश्चय पड़ेगा।

(46)

जिहि नक्षत्र में रबि तपै,
तिहीं अमावस होय।
परिवा साँझी जो मिलै,
सूर्य ग्रहण तब होय॥

भावार्थ – सूर्य जिस नक्षत्र में होता है, उसी में अमावस्या होती है। शाम को यदि प्रतिपदा हो जाय, तो सूर्यग्रहण होगा।

(47)

मास ऋृष्य जो तीज अँध्यारी।
लेहु जोतिसी ताहि विचारी॥
तिहि नक्षत्र जो पूरनमासी।
निहचै चन्द्रग्रहन उपजासी॥

भावार्थ – महीने की कृष्णपक्ष की तृतीया को कौन-सा नक्षत्र है, ज्योतिषी को इसका विचार कर लेना चाहिये। यदि उसी नक्षत्र में पूर्णिमा पड़े, तो निश्चय चन्द्रग्रहण होगा।

(48)

इतवार करै धनवन्तरि होय।
सोम करै सेवा फल होय॥
बुध बिहफै सुक्रै भरै बखार।
सनि मंगल बीज न आवै द्वार॥

भावार्थ – खेती का काम यदि रविवार को प्रारम्भ करे, तो किसान धनवान् होगा। सोमवार को करेगा, तो परिश्रम का फल मिलेगा। बुध, बृहस्पति और शुक्र को करेगा, तो अन्न से कोठिला भर जायेगा और यदि शनिवार और मंगलवार को प्रारम्भ करेगा, तो हानि होगी और बीज भी लौटकर घर नहीं आयेगा।

(49)

रवि तामूल सोम के दरपन।
भौमवार गुर धनियाँ चरबन॥
बुद्ध मिठाई बिहफै राई।
सुक्र कहै मोहिं दही सुहाई॥
सन्नी बाउभिरंगी भावै।
इन्द्रौ जीति पुत्र घर आवै॥

भावार्थ – रविवार को पान खाकर, सोमवार को दर्पण देखकर, मंगलवार को गुड़ और धनिया खाकर, बुध को मिठाई और बृहस्पति को राई खाकर यात्रा में जाना चाहिये। शुक्रवार कहता है कि मुझे दही पसन्द है। शनिवार को बाउभिरंग भाता है। इस प्रकार घर से प्रयाण करने वाला इन्द्र को भी जीत कर घर वापस आयेगा।

(50)

नारि सुहागिन जल घट लावै।
दधि मछली जो सनमुख आवै॥
सनमुख धेनु पिआवै बाछा।
यही सगुन हैं सब से आछा॥

भावार्थ – सौभाग्यवती स्त्री पानी से भरा हुआ घड़ा लाती हो, या सामने से दही और मछली आती हो, या गाय बछड़े को दूध पिला रही हो, तो शकुन सबसे अच्छा है।

❖❖❖

गिरिधर कविराय

कुण्डलिया

(1)

रहनो सदा इकन्त को, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन श्रवन अद्वैत को, यही मतो है संत॥
यही मतो है संत, तत्त्व को चिंतन करनो।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो॥
कह गिरिधर कविराय, वचन दुर्जन को सहनो।
तज के जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो॥

भावार्थ – एकान्त में सदा शान्तिपूर्वक रहना और भगवान् का भजन करना और एक अद्वैत की ही चर्चा सुनना, यही सन्त-मत है। सदा आत्मत्व का चिन्तन और सर्वत्र बिना किसी भेद-भाव के ब्रह्म की व्यापकता का ध्यान करना, यही सही सच्चा रास्ता है। दुर्वचनों को सहना और दुनियादारी से दूर निर्जन स्थान में अनासक्ति-भाव से रहना, यही सन्त का मार्ग है।

(2)

बहता पानी निर्मला, पड़ा गंध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग न लागै कोय॥
दाग न लागै कोय, जगत में रहै अलेदा।
राग द्वेष जुग प्रेत न चित को करै बिछैदा॥
कह गिरिधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होइ न कहुँ आसक्त, यथा गंगाजल बहता॥

भावार्थ – निर्मल तो बहता पानी है; जो बहता नहीं, वह गंदा हो जाता है। इसी प्रकार रमता अर्थात् विचरता हुआ साधु ही अच्छा होता है। उसे कहीं कोई दाग नहीं लगता, वह निष्कलंक रहता है। दुनियादारी से वह अलिप्त रहता है। राग और द्वेष, ये दोनों प्रेत उसके चित्त को अशान्त नहीं कर सकते। सर्दी और गर्मी का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और वह किसी में आसक्त नहीं होता। ऐसा रमता साधु तो मानो गंगा का बहता हुआ जल है।

(3)

भिक्षू, बालक, भारजा, पुनि भूपति यह चार।
अस्ति, नास्ति जानें न कछु, देही देहि पुकार॥
देही देहि पुकार रात दिन आठों जामू।
जाग्रत् सुपनै माहिं फुरै नहिं दूसर कामू॥
कह गिरिधर कविराय जगत में कोहु तितिक्षू।
जिनको तृष्णा नाहिं सो ऐसो विरलो भिक्षू॥

भावार्थ – भिक्षु, बालक, भार्या (पत्नी) और राजा, इन चारों को वास्तविक ज्ञान नहीं होता है कि कोई वस्तु असल में 'है' या 'नहीं' है। ये सदा अपनी देह का ही ध्यान रखते हैं, रात और दिन आठों पहर अपनी देह को सँवारने और सुख पहुँचाने में व्यस्त रहते हैं। जागने और सोने की अवस्था में और सपने में भी कोई दूसरा काम नहीं सोचते। ऐसा भिक्षु तो दुनिया में कोई बिरला ही मिलता है , जो तितिक्षु हो अर्थात् सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करता हो और तृष्णा के साथ जिसका कुछ भी लगाव न हो।

(4)

यारी ता संग कीजिये, गहै हाथ सों हाथ।
दुख-सुख संपत्ति-विपति में, छिन भर तजै न साथ॥
छिन भर तजै न साथ, महत दृष्टांत बखानो।
ज्यों अकास संग पोल, और इक सुनौ पखानो॥
कह गिरिधर कविराय निमक में ज्यों रस खारी।
या प्रकार जो व्याप्त ताहिं संग लइये यारी॥

भावार्थ – मित्रता उसी से की जाय, जो अपने हाथ से हमारा हाथ पकड़ ले। दुःख और सुख में और सम्पत्ति और विपत्ति में एक क्षण भी जो साथ न छोड़े। जीवन में वह ऐसे समा जाय जैसे कि आकाश में पोल (शून्यत्व) और जैसे नमक में खारापन। तभी मित्रता या प्रीति का रस है। ऐसा अभिन्न मित्र तो एक आत्मा ही है।

(5)

जानो नहीं जिस गाँव में, कहा बूझनो नाम।
तिन सखान की क्या कथा, जिनसो नहिं कछु काम॥
जिनसो नहिं कछु काम, करे जो उनकी चरचा।
राग द्वेष पुनि क्रोध बोध में तिनका परचा॥
कह गिरिधर कविराय होइ जिन संग मिलि खानो।
ताकी पूछो जात बरन कुल क्या है जानो॥

भावार्थ – जिस गाँव में जाना ही नहीं, उसका नाम क्यों पूछना ! ऐसे साथियों की क्या बात, जिनसे कोई मतलब नहीं, जिनसे कोई वास्ता नहीं, उसकी बात चलाने से लाभ क्या ! उनका परिचय तो यह मालूम हो जाने से हो जाता है कि उनमें राग है, द्वेष है और क्रोध भरा हुआ है। जिनके साथ बैठकर खाना है, अर्थात् जिनसे एकरस हो जाना है, तुम तो उन्हीं से पूछो कि उनकी जाति क्या है, वर्ण क्या है और कुल क्या है ?

(6)

मेरी तेरी छोड़ के, पक्षापक्षी नाख।
राग-द्वेष को दूर कर, निजानंद-रस चाख ॥
निजानंद-रस चाख और रस लागे फीके।
एक ज्ञान के भये दु:ख मिट जावैं जी के ॥
कह गिरिधर कविराय रंग जो पैरे गेरी।
तब यह होवै सफल तजै जब मेरी-तेरी ॥

भावार्थ – छोड़ दे मेरी और तेरी की भेद-भावना और फेंक दे पक्ष और अपक्ष को। राग-द्वेष को दूर कर आत्मानन्द के रस का आस्वादन तू किया कर। इस रस के आगे दुनिया के सारे ही रस फीके हैं। आत्मज्ञान का प्रकाश हुआ कि तेरे जी से उपजे सारे दुःख दूर हो जायेंगे। गेरुए रंग का धारण करना तभी सफल होगा, जब तू मेरी-तेरी से पिण्ड छुड़ा लेगा।

(7)

काल्ह काम करना जोऊ, सो तो कीजै आज।
मूल अविद्या-नींद ते, शीघ्रहि तू अब जाग ॥
शीघ्रहि अब तू जाग, आपना कर ले कारज।
ऐसी मानव-देह फेर कब मिलहै आरज ॥
कह गिरिधर कविराय, काट कर भ्रम के जाल।
लखो आपको ब्रह्म काल को जो है काल ॥

भावार्थ – जो काम कल करना है, वह आज ही कर लिया जाय। अविद्या की गहरी निद्रा से तू अब शीघ्र जाग जा, और अपना काम पूरा कर डाल। मालूम नहीं, मनुष्य का यह उत्तम शरीर फिर कब मिलेगा। भ्रान्ति का जाल काटकर फेंक दे, और अपने आपको ब्रह्म-स्वरूप में देख, जो ब्रह्म काल का भी काल है।

(8)

तीनों मूल उपाधि की, जर, जोरू, और जमीन ।
है उपाधि तिसके कहाँ, जाके नहिं ये तीन ॥
जाके नहिं ये तीन, हृदय में नाहिंन इच्छा ।
परमसुखी सो साधु, खाय यद्यपि लै भिच्छा ॥
कह गिरिधर कविराय, एक आतम-रस-भीनो ।
निर्भय विचरै संत सर्वथा तजकर तीनों ॥

भावार्थ – जर (धन-दौलत), जोरू (स्त्री) और ज़मीन, ये तीनों उपाधि की जड़ हैं। निरुपाधि वही है, जिसकी आसक्ति इन तीनों में नहीं। जिसके मन में कोई वासना नहीं, और जो भिक्षा पर गुज़र करता है वह सबसे बड़ा सुखी है। एक आत्म-रस में ही वह सदा मग्न रहता है। ऐसा सन्त इन तीनों उपाधियों को छोड़कर चाहे जहाँ निर्भय होकर विचरता है।

(9)

बेटो बेटी भानजा, भाई ससुर अरु सार ।
पिता पितामह आदि लों, सब मतलब के यार ॥
सब मतलब के यार नहीं इनमें कोई तेरो ।
भयो मुझे परमाद जो इनको बन रह्यो चेरो ॥
कह गिरिधर कविराय, सबन से झगरा मेटो ।
ना तू बाप किसी का, तेरा कोई ना बेटो ॥

भावार्थ – बेटा, बेटा, भानजा, भाई, ससुर, साला और पिता और पितामह ये सभी मतलब के मीत हैं। असल में इनमें से कोई भी तेरा सच्चा साथी नहीं। तेरा यह पागलपन है जो तू इनका गुलाम बन गया है। सारा प्रपंच मिटा दे, असल में न तू किसी का बाप है, और न कोई तेरा बेटा है।

(10)

तेरो ईश्वर तूहि है, और न दूसर सीव ।
महत भूल कर, आपनी, भयो तुच्छ तू जीव ॥
भयो तुच्छ तू जीव, न कारज कोउ सँवार्यो ।
अपनो हत्थी आप, आपना काम बिगार्यो ॥
कह गिरिधर कविराय, आपको आपै हे रौ ।
आधि-व्याधि को ताप सकल मिटि जावे तेरो ॥

भावार्थ – तेरा ईश्वर तू ही है और तू ही तेरा शिव है, कोई दूसरा शिव नहीं। अपने महत्त्व को भूलकर अविद्या के कारण तू अपने को तुच्छ जीव मानने लगा। अपने ही हाथों तू अपना काम बिगाड़

बैठा। अब खुद ही अपने-आपको तू देख; कोई आधि-व्याधि नहीं रहेगी और तेरा सारा सन्देहजनित दुःख दूर हो जायेगा।

(11)

साई, वैर न कीजिये, गुरु, पंडित, कवि, यार।
बेटा, वनिता, पँवरिया, यज्ञ-करावनहार॥
यज्ञ-करावनहार, राजमंत्री जो होई।
विप्र, परोसी, वैद्य, आपकी तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, जुगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवे साई॥

भावार्थ – गुरु, विद्वान्, कवि, संगी-साथी, पुत्र, पत्नी, द्वारपाल, यज्ञ कराने वाला पुरोहित, राज-मंत्री, ब्राह्मण, पड़ोसी, वैद्य और रसोई बनाने वाला – इन तेरह जनों से कभी बैर नहीं बाँधना चाहिये।

(12)

जाको धन-धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो संग राखै ही बनै, तो करि राखु अपंग॥
तो करि राखु अपंग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगन्धें खाय, चित्त में एक न दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, कबहुँ विश्वास न वाको।
रिपु-समान परिहरिय, हरी धन-धरती जाको॥

भावार्थ – जिसका धन और धरती छीन ली, उसे कभी साथ में नहीं रखना चाहिये। यदि साथ रखना ही है, तो उसे अपंग अर्थात् अशक्त कर दिया जाय, और भूलकर भी उसका विश्वास न किया जाय। भले ही वह सौ-सौ सौगन्ध खाये, पर उसकी एक भी बात न मानी जाये। जिसका धन और धरती छीन ली उसे शत्रु की तरह त्याग देना चाहिये।

(13)

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय।
लेत परम सुख ऊपजै, लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय, ऊँच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की रीति, माँगते मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय जानि रहै मन में रूठा।
बहुत दिना हो जाय, कहै तेरो कागज झूठा॥

भावार्थ – मीठी बातें बना-बनाकर पैसा लेते हुए बड़ा सुख मिलता है। पर चुकाने के लिए कहा जाये, तो साफ मुकर जाता है और गाली-गलौज पर उतर आता है। माँगते ही मारने को दौड़ता है। रूठा हुआ रहता है, और जब बहुत दिन बीत जाते हैं, तो कहता है कि तेरा कागज, तेरा बहीखाता झूठा है।

(14)

सोना लावन पिव गये, सूना करि गये देश।
सोना मिला न पिव मिले, रूपा हो गये केश॥
रूपा हो गये केश, रोय रंग रूप गँवावा।
सेजन को विश्राम पिया बिन कबहुँ न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौ लै सोना॥

भावार्थ – पति सोने का व्यापार परदेश करने क्या गये, सारा घर ही सूना हो गया। न सोना मिला और न प्रियतम ही लौटकर मिला। राह जोहते-जोहते केश सफेद हो गये, जोवन का रंग चला गया और रूप भी। बिना प्रियतम के सूनी सेज पर सुख और चैन कभी नहीं मिला। जीवन अलोना (नीरस) हो गया, इसलिए मेरे स्वामी घर लौट आओ। सोना लादकर क्या करोगे ?

(15)

गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे कागा-कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनौ हो ठाकुर मन के।
बिन गुण लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥

भावार्थ – गुण के गाहक हज़ारों हैं, बिना गुण के कोई नहीं पूछता। कौवा और कोयल दोनों का रंग एक-सा है, पर कोयला का बोल जहाँ सबको सुहाता है, वहीं कौवे का काँव-काँव कान को अप्रिय लगता है।

(16)

साईं, सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार, यार संगही संग डोलै।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलै॥
कह गिरिधर कविराय, जगत का येही लेखा।
करत बेगरजी प्रीति मित्र कोई बिरला देखा॥

भावार्थ – दुनिया में सारा व्यवहार मतलब का है। मित्र तभी तक साथ देता है और पीछे-पीछे घूमता है, जब तक उसका मतलब सधता है। पैसा पास में न रहने पर वह मुँह से भी नहीं बोलता। दुनिया का यही नियम है। निःस्वार्थ प्रीति करने वाला तो कोई बिरला ही देखा गया।

(17)

प्रीति कीजिये बड़ेन सों, समया लावै पार।
कायर कूर कपूत हैं, बोरि देत मझधार॥
बोरि देत मंझधार, प्रीति की कवन बड़ाई।
पछिताने फिरि देहिं जगत में अपयश पाई॥
कह गिरिधर कविराय, प्रीति साँची सिखि लीजै।
व्यवहारी जो होय तऊ तन-मन-धन दीजै॥

भावार्थ – प्रीति बड़ों से ही जोड़ी जाय, समय आने पर वे पार लगा देंगे। कायर, मूर्ख और कुपुत्र तो मझधार में डुबो देते हैं, उनकी प्रीति का मोल क्या ? पछताना हाथ लगता है, और दुनिया में बदनामी होती है। सिखावन सच्ची प्रीति से ली जाय; जो दिल का बड़ा हो उसे तन-मन और धन भी दे देना चाहिये।

(18)

साईं, बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हिरनाकस्यप, कंस को, गयउ दुहुँन को राज॥
गयउ दुहुँन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर हँसे बहुमण्डल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, जुगन याही चलि आई।
पिता-पुत्र के वैर नफा कहु कौने पाई॥

भावार्थ – बेटा और बाप के बीच में अनबन होने से निश्चय ही नुकसान होता है। जैसे हिरण्यकश्यप और कंस का उदाहरण लीजिए। दोनों को अपने-अपने राज्य से हाथ धोने पड़े। दुश्मनों की बन आई

और जग-हँसाई हुई। यह बात कुछ नयी नहीं है, युग-युग से चली आयी है कि पिता और पुत्र के बीच वैर होने से किसे लाभ हुआ ?

(19)

साईं घोड़े अछतहीं, गदहन आयो राज।
कौआ लीजै हाथ में, दूरि कीजिए बाज॥
दूरि कीजिए बाज, राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिए कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहाँ यह बूझि बढ़ाई।
तहाँ न कीजे भोर, साँझ उठि चलिये साईं॥

भावार्थ – क्या ज़माना आया है कि घोड़ों के होते हुए गधे राज कर रहे हैं ! कौए को पाल लिया और बाज को निकाल बाहर कर दिया गया ! सिंह को कैद कर लिया और सियार को हाथी पर सवार करा दिया गया ! जहाँ ऐसी उलटी समझ हो यानी अन्धेर हो, वहाँ से साँझ पड़ते ही चल देना चाहिये, रातभर भला वहाँ कौन ठहरेगा !

(20)

साईं, अपने भ्रात को, कबहूँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए, सदा राखिए पास॥
सदा राखिए पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेश, ताहि की गति सुन लीजै॥
कह गिरिधर कविराय, राम सो मिलिगो जाई।
पाय विभीषण राज्य, लंकापति बाज्यो साईं॥

भावार्थ – अपने भाई को कभी त्रास नहीं देना चाहिये, एक पल भी दूर नहीं रखना चाहिये। हमेशा उसे अपने पास रखना चाहिये। लंकापति रावण ने अपने भाई विभीषण को त्रास दिया, इस बात को सभी जानते हैं। राम से जाकर वह मिल गया और तत्काल राम ने उसे लंकापति बना दिया।

(21)

लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिए संग।
गहिरी नदी नारा जहाँ, तहाँ बचावै अंग॥
तहाँ बचावै अंग, झपटि कुत्ता कँह मारै।
दुश्मन दावागीर होय तिनहूँ को झारै॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धर के बाठी।
सब हथयारन छाँड़ि हाथ मँह लीजै लाठी॥

भावार्थ – लाठी कितने काम की है, इसमें कितने गुण भरे पड़े हैं । हमेशा इसे अपने साथ रखना चाहिये । नदी या कोई नाला हो, तो यह डूबने से बचा लेती है, अन्दाजा लगाकर कि पानी कितना गहरा है । झपटकर कुत्ते को भी वह मारती है, और दुश्मन पर भी वार करती है । इसलिए दूसरे तमाम हथियारों को छोड़कर हाथ में हमेशा लाठी रखनी चाहिये ।

(22)

कमरी थोरे दाम की, आवै बहुतै काम ।
खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान ॥
उनकर राखै मान, बुन्द जँह आड़े आवै ।
बकुचा बाँधे मोट राम को झारि बिछावै ॥
कह गिरिधर कविराय, मिलति है थोरे दमरी ।
सब दिन राखै साथ बड़ी मर्यादा कमरी ॥

भावार्थ – कम्बली यह बहुत थोड़े पैसों की है, लेकिन काम कितना ज्यादा देती है । तनजेब, मलमल और बाफता की इज्जत बचा लेती है । पानी बरसने पर उनको भींगने नहीं देती । गठरी भी उससे बाँध लेते हैं, और रात को सोने के लिए झाड़कर उसे बिछा भी लेते हैं । ना-कुछ दाम में खरीदी हुई कम्बली हरदम साथ रखनी चाहिये, जो हर तरह से बड़ी उपयोगी है ।

(23)

बिना विचारे जो करै, सो पाछै पछताय ।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय ॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न आवै ।
खान-पान सनमान, राग रंग मनहि न भावै ॥
कह गिरिधर कविराय, दु:ख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिस माहिं, कियो जो बिना विचारे ॥

भावार्थ – जो मनुष्य पहले से बिना विचार किये कोई काम कर बैठता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है । अपना काम बिगाड़ लेता है और दुनिया उस पर हँसती है । चित्त बेचैन रहता है, खाना-पीना सुहाता नहीं, और राग-रंग में लगाने पर भी मन नहीं लगता । बिना विचारे किये काम का दुःख मन में सदा सालता रहता है ।

(24)

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोय चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती।
आगे की सुध लेइ समझु बीती सो बीती॥

भावार्थ – जो बीत चुका उसे भूल जाओ और आगे जो काम करना है उसका ध्यान रखो। सहज-सहज जो बन पड़े, उसी में अपना चित्त लगा दो। इससे तुम्हारे विरोधी तुम पर हँसेंगे नहीं और तुम्हारी कुछ हानि होने की नहीं। भरोसा रखो कि जो होना था वह तो हो चुका, अब आगे का ध्यान रखना है।

(25)

साईं, अपने चित्त की भूलि न कहिए कोय।
तब लग मन में राखिए जब लग काज न होय॥
जब लग काज न होय, भूल कबहूँ नहिं कहिये।
दुर्जन हँसै न कोय, आप सियरे है रहिये॥
कह गिरिधर कविराय, बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देति आप कहिये नहिं साईं॥

भावार्थ – अपने मन की बात भूलकर भी नहीं कहनी चाहिये। जब तक काम पूरा न हो जाय, तब तक उसे मन में ही रखना चाहिये। विरोधी भले ही हँसी उड़ायें, अपने को तो शान्त ही रहना चाहिये। बखान करना बेकार है, तुम्हारी करनी तो खुद ही बता देगी। चतुर जनों का यही स्वभाव है।

(26)

साईं समय न चूकिए, यथाशक्ति सनमान।
का जानैं को आइहै, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि अंक भरि हृदय लगावै॥
कह गिरिधर कविराय, सबै या में सधि जाई।
शीतल जल फलफूल समय जनि चूको साईं॥

भावार्थ – समय नहीं चूकना चाहिये। अतिथि का यथाशक्ति सम्मान करना ही है। कौन जानता है कि तेरे द्वार पर कौन कब आ जायेगा। अतिथि के आने की तिथि क्या ? किसी भी समय वह आ सकता

है। दिल खोलकर उसे तू हृदय से लगा ले, और उस घड़ी ठण्डा पानी और फल-फूल जो भी तेरे पास हो, उससे उसका सम्मान कर।

(27)

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज शीस आगे धर दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, बड़ेन की याही बानी।
चलिए चाल सुचाल, राखिए अपनो पानी॥

भावार्थ – सयानापन इसी में है कि नाव में जब पानी भर गया हो और घर में दौलत बढ़ गई हो, तो पानी को हाथ से उलीच देना चाहिये और दौलत को बाँट देना चाहिये, नहीं तो, नाव डूब जायेगी और दौलत भी नहीं बचेगी। ऐसी घड़ी में राम को याद किया जाये और दूसरों की खातिर अपना सिर भी आगे रख दिया जाये। बड़ों के स्वभाव में यही बात होती है कि नेक रीति से रहा जाये और अपनी लाज को बचा लिया जाये।

(28)

राजा के दरबार में, जैसो समया पाय।
साईं, तहाँ न बैठिए, जँह कोउ देय उठाय॥
जँह कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हँसिये ना हहरोय, बात पूछे तो कहिये॥
कह गिरिधर कविराय, समय सो कीजै काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहै राजा॥

भावार्थ – राज-दरबार में समय देखकर जाना चाहिये, और उस जगह नहीं बैठना चाहिये, जहाँ से कोई उठा दे। बिना पूछे मुँह से बोल नहीं निकालना चाहिये और ठहाका मारकर हँसना नहीं चाहिये। समय के अनुसार अपना काम साधना चाहिये। जल्दबाजी न की जाये, नहीं तो राजा नाराज हो जायेगा।

(29)

कृतघन कबहुँ न मानहीं, कोटि करै जो कोय।
सर्वस आगै राखिए, तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै फेरि तिहिं नहिं पहिचानै॥
कह गिरिधर कविराय, रहत नितहीं निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन॥

भावार्थ – कितना ही उपकार किया जाय, पर एहसानफरामोश राजी होने का नहीं। अपना सरबस आगे रख दिया जाय, तब भी वह अपना होने से रहा। भलाई को वह भला नहीं मानेगा। मतलब निकल जाने पर वह पहचानेगा भी नहीं। कृतघ्न को कोई डर नहीं। उसे परवाह नहीं कि कौन मित्र है और कौन शत्रु है, वह तो सिर्फ पैसे का लालची है।

(30)

रहिये लटपटि काटि दिन, बरु घामे में सोय।
छाँह न बाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा देहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै॥
कह गिरिधर कविराय, छाँह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाहिं, तऊ छाँहे में रहिये॥

भावार्थ – भले ही धूप में लेटे रहो और सो जाओ, किसी तरह कष्ट में समय काट लो, पर जो कमजोर पेड़ हो, उसकी छाँह तले न बैठो। किसी-न-किसी दिन वह धोखा देगा; तेज हवा चलने पर वह टूट कर गिर जायेगा। सो छाया तो बड़े की ही अच्छी, पत्ते झड़ जाने पर भी पेड़ तो रहेगा ही।

❖❖❖

दीनदयाल गिरि

कुण्डलिया

(1)

जिन तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम।
तिन भंजन करि आपनो कियो प्रभंजन नाम।
कियो प्रभंजन नाम बड़ो कृतघ्न बरजोरी।
जब जब लगी दवागि दियो तब झोंकि झकोरी।
बरनै दीनदयाल सेउ अब खल थल मरु को।
लै सुख सीतल छाँह तासु तोर्‌यो जिन तरु को॥

(2)

सुनिये मीत गुलाब अलि क्यों मन रहि है रोकि।
रहित न धीरज रसिक चित, कुसमित कली बिलोकि।
कुसमित कली बिलोकि, चहूँ दिसि भरत भाँवरी।
ताहि न कंटक बेधि करौ मत बिकल बावरी।
बरनै दीनदयाल पालि हित अपनो गुनिये।
रस पराग जुत रागे सुगंधहि दै जस सुनिये॥

(3)

दीने ही चोरत अहौ इन सम चोर न और।
तिहारे सुजस जें दूसरो न वारो कछु ठौर।
सजग रहो या ठौर और राखिये रखवारे।
ना तो परिमल लूटि लेहिंगे सबै तिहारे।
बरनै दीनदयाल रहो हो मित्र अधीने।
भली करत रैन कपाट रहत हो दीने॥

(4)

हे पांडे यह बात को को समुझे या ठाँव।
इवै न कोउ हैं सुधी यह ग्वारन को गाँव।
यह ग्वारन को गाँव गाँव नहिं सूधे बोलैं।
बसै पसुन के संग अंग ऐंड़े करि डोलैं।
बरनै दीनदयाल छाँछ भरि लीजै भांड़े।
कहा कहो इतिहास सुनै को इत हे पांडे॥

(5)

कासों हनिये कोप को कापै पैये ज्ञान।
गुरु मौन सैनहिं कह्यौ छिति छवै के धरि कान।
छिति छवै के धरि कान दसन रवि फेरि लखाए।
देखि केस की ओर सुनैन कपाट लगाए।
बरनै दीनदयाल सिख्य गुरु की करुना सों।
समुझि लई सब सैन, बैन तिन कह्यौ न कासों॥

(6)

पति की संगति ही सती लै सुगती इहि आगि।
धरे सिंधोरा कर परे अब दै डगमग त्यागि।
अब दै डगमग त्यागि भागि जनि चेति चिता कों।
जरे मरे सिधि पाउ कलंक न लाउ पिता कों।
बरनै दीनदयाल बात यह नीकि मति की।
सुजस लोक, परलोक श्रेय, ले संगति पति की॥

(7)

केतौ सोम कला करौ, करौ सुधा कौ दान।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया परवान॥
यह तेलिया परवान बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटीं याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी॥
बरनै दीनदयाल, चन्द ! तुम ही चित चेतौ।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजै केतौ॥

(8)

चपला संगति ते भयो घन तव चपल सुभाव।
ता छिन तें बरखन लगे अमरित को तजि ग्राव।
अमरित को तजि ग्राव हनत को तुम्है निवारै।
अहो कुसंग प्रचंड काहि जग में न बिगौरै।
बरनै दीनदयाल रहैगि न है यह सचला।
ताबस आजस न लेहु, देहु चित, है चल चपला॥

(9)

वारे को तू बनिक है सौदा लै इति हाट।
चौमुख बनो बाजार है बहु दुकान को ठाट।
बहु दुकान को ठाट कोउसाँची कोउ झूठी।
आछी भाँति विचार वस्त्र लै बड़ी अनूठी।
बरनै दीनदयाल खोउ धन वृथा न प्यारे।
घर आवेगो काम इते सब लूटन वारे॥

(10)

आयो चातक बूँद लगि सब सर सरित बिसारि।
चहियत जीवनदान, तिहि निरदै पाहन मारि।
निरदै पाहन मारि पंख बिन ताहि न कीजै।
याहि रावरी आस प्यास हरि जग जस लीजै।
बरनै दीनदयाल दुसह दुःख आतप तायो।
तृषावंत हित पूर दूर ते चातक आयो॥

(11)

गरजै बातन तें कहा धिक नीरधि, गंभीर।
बिकल बिलोकैं कूप-पथ तृषावंत तो तीर।
तृषावंत तो तीर फिरैं तोहि लाज न आवै।
भँवर लोल कल्लोल कोटि निज बिभौ दिखावै।
बरनै दीनदयाल सिंधु तोकों को बरजै।
तरल तरंगी ख्यात बृथा बातन तें गरजै॥

(12)

सिंधु बड़ाई भूलि जनि नद नमि के चलि चाल।
सहिबो परिहै खार ह्वै बड़वानल की ज्वाल।
बड़नावल की ज्वाल नाम रूपहु मिटि जैहै।
ह्वै है अधिक अपीव जीव कोउ नीर न छ्वैहै।
बरनै दीनदयाल ब्याज की कहा चलाई।
जैहै मूल नसाय पाय नद सिंधु बड़ाई॥

(13)

बरखै पयोद इत मानि मोद मन माहिं।
यह तौ ऊसर भूमि अंकुर जमिहैं नाहिं॥
अंकुर जमिहैं नाहिं बरख सत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा बृथा तेरो श्रम जैहै॥
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै॥

(14)

अहे खेलारी चूक मति पंजा बिरवे संभाल।
परो दाव तेरो खरो करि लै सारी लाल।
करि लै सारी लाल निज चाल न छूटै।
सनमुख ही सुख राखि देख जुग कहू न फूटै।
बरनै दीनदयाल जाति बाजी इहि कारी।
हारी मूढ़न संग बार बहु अहे खेलारी॥

(15)

चल चकई तिहि सर विषै जहँ नहिं रैनि बिछोह।
रहत एकरस दिवस ही सुहृद हंस संदोह।
सुहृद हंस संदोह कोह अरु द्रोह न जाके।
भोगत सुख अम्बोह मोह दु:ख होय न ताके।
बरनै दीनदयाल भाग्य बिन जाय न सकई।
प्रिय मिलाप नित रहै ताहि सर तू चल चकई॥

(16)

बौरे, लखि कै लालिमा हे भौरे, मति भूल।
है छलमय पल के असद ये कागद के फूल।
ये कागद के फूल सुगंध मरंद न यामै।
मृदु माधुरी पराग नहीं अनुरागत कामै।
बरनै दीनदयाल चेत चित में इहि ठौरे।
लुटि जैहै यह बाग छन-छन की है बौरे॥

(17)

बानी कटु सुनि कोप की क्षमा गहो न गलान।
कहा हानि मृगराज की भूकत जौ लखि स्वान॥
भूकत जौ लखि स्वान हारि मानैगो आपै।
बैठि रहो हे बीर धीर तुम बोलत कापै॥
बरनै दीनदयाल बात बुध बिमल बखानी।
कीजै कछू न सोच सठन की सुनि कटु बानी॥

(18)

बासा यहि तरु पै तुम्हैं बासा बासर एक।
बकै न इत ब्याधा जुरे वाही ओर अनेक।
वाही ओर अनेक का कहौं बाज रहै ना।
जाल परेवा होय जौन दुख सो कहुँ मैंना।
बरनै दीनदयाल करै तू के ही आसा।
लाल मानि अब टेरि भजो सर आवत बासा॥

(19)

पनिहारी यहि सर परैं लरति रही सब पाह।
रीतो घट लै घर चली उतै मारिहै नाह।
उतै मारिहै नाह काह तेहि उत्तर दैहै।
रोय रोय पति खोय फेरि सर पै फिरि ऐहै।
बरनै दीनदयाल इतौ हँसिहैं सब नारी।
ख्वारी दुहुँ दिसि परी अरी ग्वारी पनिहारी॥

(20)

तेरे ही बिच बस्तु वह जाको जगत सुगंध।
खोजत कहा कुरंग, तू अंबक आछत अंध।
अंबक आछत अंध कदा दिसिदिसि भरमैहै।
अपनी दिसि अबलोकि तबै बाको सुख पैहै।
बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर हेरे।
अंतरमुख ह्वै ढूँढ सुगंध सबै घट तेरे॥

कवित्त

(21)

सुनो अरविंदहे मलिन्द बिन सजै नहिं
केलि मलकीटन की रावरे वितान में।
जानैं कहा मंद ये सुगंध मकरंद गुन
गावैं दीनदयाल तक माधुरी जहान में।
तउ यह कला लखि भला नहिं कहैं अब
मूँदि लेहुँ मुख गिने जाहुगे मलान में।
हेरि हँसि और फिरि खोलिहो भए तें भोर
कीजिए सुजान बात चली जो जहान में॥

दोहा

(22)

बहु छुद्रन के मिलन तें हानि बली की नाहिं।
जूथ जंबुकन तें नहीं केहरि कहुँ नसि जाहिं॥

(23)

पराधीनता दु:ख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै कनकपींजरे दीन॥

❖❖❖

रैदास (रविदास)

भक्ति-नीति

पद

(1)

ऐसौ कछु अनभौ कहत न आवै ।
साहिब मिलै तो को बिलगावै ॥
सब में हरि है हरि में सब है, हरि अपनौ जिन जाना ।
साखी नहीं और कोइ दूसर, जाननिहार सयाना ॥
बाजीगर सों राचि रहा, बाजी का मरम न जाना ।
बाजी झूठ साँच बाजीगर, जाना मन पतियाना ॥
मन थिर होइ तो कोइ न सूझै, जानै जाननिहारा ।
कहै रैदास बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप सँभारा ॥

(2)

नरहरि चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ॥
तूँ मोहिं देखै हौं तोहि न देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।
तूँ मोहिं देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा ।
कह रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥

शब्दार्थ – नरहरि = नरसिंह (ईश्वर के एक अवतार का नाम) ।

(3)

जब राम नाम कहि गावैगा, तब भेद अभेद समावैगा ॥
जे सुख ह्वै या रस के परसे, सो सुख का कहि गावैगा ॥
गुरु परसाद भई अनुभौ मति, बिष अम्रित सम धावैगा ॥
कह रैदास मेटि आपा पर, तब वा ठौरहि पावैगा ॥

(4)

संतो अनिन भगति यह नाहीं ।
जब लग सिरतज मन पाँचो गुन, ब्यापत है या माँही ॥
सोई आन अंतर कर हरि सों, अपमारग को आनै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानै ॥
सत्य सनेह इष्ट अँग लावै, अस्थल अस्थल खेलै ।
जो कछु मिलै आन आखत सों, सुत दारा सिर मेलै ॥
हरिजन हरिहि और न जानै, तजै आन तन त्यागी ।
कहै रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी ॥

शब्दार्थ – अनिन = अनन्य । आखत = अक्षत, कुछ चावल ।

(5)

भगती ऐसी सुनहु रे भाई। आइ भगति तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे ।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौं लों तत्त्व न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूँड़ मुड़ायो, कहा तीर्थ ब्रत कीन्हे ।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हे ॥
कहै रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै ॥

शब्दार्थ – पिपिलक (पिपीलिका) = चींटी ।

(6)

तेरा जन काहे को बोलै ।
बोलि बोलि अपनी भगति को खोलै ॥
बोलत बोलत बढ़ै बियाधी, बोल अबोलै जाई ।
बोलै बोल अबोल कोप करै, बोल बोल को खाई ॥
बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बेद बड़ाई ।
उर में धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गँवाई ॥
बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लग समझ न भाई ।
बोलि बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई ॥
बोलै गुरु अरु बोलै चेला, बोल बोल की परतिति आई ।
कह रैदास मगन भयो जबही, तबही परमनिधि पाई ॥

(7)

सुकछु बिचार्‌यो तातें मेरो मन थिर ह्वै गयो।
हरि रंग लाग्यो तब बरन पलटि भयो॥
जिन यह पंथी पंथ चलावा। अगम गवन में गम दिखलावा॥
अबरन बरन कहै जनि कोई। घट घट ब्यापि रह्यौ हरि सोई॥
जेइ पद नसु नर प्रेम पियासा। सो पद रमि रह्यौ जन रैदासा॥

(8)

माधो संगत सरति तुमारी, जगजीवन किस्न मुरारी॥
तुम मखतूल चतुरभुज, मैं बपुरो जस कीरा।
पीवत डाल फूल फल अम्रित, सहज भई मति हीरा॥
तुम चंदनहम अरंड बापुरो, निकट तुमारी बासा।
नीच बिरछि ते ऊँच भये हैं, तेरी बास सुबासन वासा॥
जाति भी ओछी जनम भी ओछा, ओछा करम हमारा।
हम रैदास रामराई को, कहै रैदास बिचारा॥

शब्दार्थ – सरति = भाती है। मखतूल = श्रेष्ठ।

(9)

थोथो जनि पछोरो रे कोई।
जोइ रे पछोरो जा में निज कन होई॥
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गँवाया॥
थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी॥
थोथा मन्दिर भोग बिलासा। थोथी आन देव की आसा॥
साचा सुमिरन नाम बिसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा॥

शब्दार्थ – बिसासा = विश्वास।

(10)

का तूँ सोवै जाग दिवाना।
झूठी जिउन सत्त करि जाना॥
जिन जनम दिया सो रिजक उमड़ावै, घट घट भीतरि रहट चलावै।
करि बंदगी छाड़ि मैं मेरा, हृदय करीम सँभारि सबेरा॥
जो दिन आवै सो दुखमें जाई, कीजै कूच रह्यो सच नाहीं।
संगि चली है हम भी चलना, दूर गवन सिर ऊपर मरना॥

जो कछु बोया लुनिये सोई, ता में फेर फार कस होई।
छाड़िय कूर भजै हरि चरना, ताको मिटै जनम अरु मरना॥
आगे पंथ खरा है झीना, खाँडे धार जैसा है पैना।
जिस ऊपर मारग है तेरा, पंथी पंथसँवार सबेरा॥
क्या तैं खरचा क्या तैं खाया, चल दरहाल दिवान बुलाया।
साहिब तो पै लेखा लेसी, भीड़ पड़े तूँ भरि भरि देसी॥
जनम सिराना किया पसारा, सूझि पर्‌यो चहुँ दसि अँधियारा।
कह रैदास अज्ञान दिवाना, अजहूँ न चेतहु नीफँद खाना॥

शब्दार्थ – जिउन = जीवन। रिजक = जीविका। लुनिये = काटिये। पैना = तेज़। दरहाल = तुरत। नीफँद = निर्बन्ध। खाना = घर।

(11)

सो कहा जानै पीर पराई।
जाके दिल में दरद न आई॥
दुखी दुहगिनि होइ पियहीना, नेह निरति करि सेव न कीना।
स्याम प्रेम का पंथ दुहेला, चलन अकेला कोइ संग न हेला॥
सुख की सार सुहागिनि जानै, तन मन देय अंतर नहिं आनै।
आन सुनाय और नहिं भाषै, रामरसायन रसना चाखै॥
खालिक तौ दरमंद जगाया, बहुत उमेद जवाब न पाया।
कह रैदास कवन गति मेरी, सेवा बन्दगी न जानूँ तेरी॥

शब्दार्थ – दरमंद = दरमाँदा, आजिज।

(12)

कहु मन राम नाम सँभारि।
माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि।
तोरि उतंग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि॥
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच बिचारि।
बहुरि येहि कलि काल नाहीं, जीति भावै हारि॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि।
कह रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारि॥

(13)

जो तुम गोपालहि नहिं गैहौ ।
तो तुम काँ सुख में दुख उपजै सुखहि कहाँ ते पैहो ॥
माला नाय सकल जग डहको झूँठो भेख बनैहौ ।
झूँठे ते साँचे तब होइहौ हरि की सरन जब ऐहौ ॥
कन रस बन रस और सबै रस झूँठहि मूड़ डोलैहौ ।
जब लगि तेल दिया में बाती देखत ही बुझि जैहौ ॥
जो जन राम नाम रँग रातें और रंग न सुहैहौ ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ ॥

शब्दार्थ – कन रस = कान से सुनने का मज़ा । बन रस = ज़ुबान से बोलने का मज़ा ।

(14)

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी । जाकी अँग अँग बास समानी ॥
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा । जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती । जा की जोति बरै दिन राती ॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा । जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा । ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

(15)

प्रभुजी संगति सरन तिहारी ।
जग जीवन राम मुरारी ॥
गली गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो ।
संगत के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो ॥
स्वाँति बूँद बरसै फनि ऊपर, सीस बिषै होइ जाई ।
ओही बूँद कै मोती निपजै, संगति की अधिकाई ॥
तुम चंदन हम रेंड़ बापुरे, निकट तुम्हारे आसा ।
संगत के परताप महातम, आवै बास सुबासा ॥
जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा ।
नीचै से प्रभु ऊँच कियो है, कह रैदास चमारा ॥

शब्दार्थ – फनि = साँप । बिषै = ज़हर ।

❖❖❖

नानक

भक्ति-नीति

साखी (सलोक)

(1)

साचा नामु अराधिया, जम ले भन्ना जाहि ।
नानक करनी सार है, गुरमुख घड़िया राहि ॥

शब्दार्थ – जम (यम) = मृत्यु-दूत, काल की रूपात्मक भौतिक शक्तियाँ । भन्ना जाहि = कुछ न कर पाने की झल्लाहट । करनी = कृत कर्म, आचरण । गुरमुख = गुरु अनुगामी, गुरु-परम्परा का विश्वासी । घड़िया राहि = राह (मार्ग, गंतव्य, लक्ष्य) का निर्धारण या निर्माण करता है ।

भावार्थ – उस सत्य, शाश्वत, अव्यय, अक्षय, निरन्तर प्रभु रूप सत्य-सत्ता में निरन्तर चित्त-अनुभावन ही सन्त-वाणी में नाम-आराधन का अभिप्रेत है । नाम-आराधन की सात्विक-शक्ति के समक्ष काल की रूपात्मक भौतिक शक्तियाँ विवशता में झल्लाकर भाग जाती हैं । कृत कर्म, आचरण ही शाश्वत जीवन का सार तत्त्व है । गुरु अनुगामी मनुष्य ज्ञान-विचार (विवेक) के आधार पर कर्म-चुनाव करके, कर्म-निरत रहता है और राह (मार्ग, गंतव्य, लक्ष्य) का निर्धारण या निर्माण करता है अर्थात् सद्गुरु (ज्ञान-विचार या विवेक) का अनुगामी मनुष्य अपना मार्ग स्वयं गढ़ता है ।

(2)

कलियाँ थीं धउले भये, धउलियों भये सुपैदु ।
नानक मता मतों दियाँ, उज्जरि गइया खेडु ॥

शब्दार्थ – 'कलियाँ थीं धउले भये' = काले (करियल) केश धवल (श्वेत, भूरे) हो गए । 'धउलियों भये सुपैदु' = धवल केश चट्ट सफेद हो गए । 'मता मतों दियाँ' = मतवादियों ने 'मतवाद' ही दिए हैं । 'उज्जरि गइया खेडु' = खेल (सारा जीवन) ही उजड़ गया ।

भावार्थ – 'चितावनी' (चेतावनी) विषयक वाणी में कबीरादि सन्तों की तरह गुरु नानक ने भी, मनुष्य को, प्रभु से प्राप्त जीवनावधि को व्यर्थ के कार्यों में गँवाकर नष्ट करते-रहने से, वाणी-चाबुक लगाकर, सावधान किया है कि अरे मानव ! लोकाचार करते हुए अथवा अहंकारजन्य आपा-धापी करते हुए व्यर्थ के कार्यों में अर्थात् अमूल्य जीवन-अवधि तुच्छ उद्देश्यों में मत खपा । बचपन-युवावस्था में जो केश काले (करियल) थे, वे प्रौढ़ होने पर धवल (श्वेत, भूरे) हो गए हैं । धवल

केश भी बाद की वृद्धावस्था में परिपक्व होकर चट्ट सफेद हो जाते हैं, फिर भी इस परिवर्तन से मनुष्य अपनी करनी के प्रति सावधान या जाग्रत् नहीं होता। मत-मतान्तर (वाद-विवाद) में लगे रहते हुए ही मतवादियों ने 'मतवाद' ही दिए हैं। जीवनावधि समाप्त होने पर सारा जीवन ही उजड़ जाता है।

(3)

जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवउ पाँउ पसारि॥

शब्दार्थ – जागो रे = अरे मनुष्यो ! जाग्रत् होओ। जिन जागना = जिनको जाग्रत् (सावधान) होना है, वे ही। जागनि की बारि = जाग्रत् होने की वेला (समय)। सोवउ पाँउ पसारि = फिर सोते ही रहना है।

भावार्थ – वे मनुष्य जिन्हें इस मनुष्यजीवन में जाग्रत् (सावधान) होना है, उन्हें सावधान करते हुए नानक कहते है कि अरे मनुष्यो ! जाग्रत् होओ। यह मनुष्य जीवन जाग्रत् होने की वेला (समय) है। समय हाथ से निकल जाने पर, मृत्यु की चादर के नीचे (पीछे) फिर सोते ही रहना है। 'पाँव पसार कर सोना' मुहावरा है जो मृतक के प्रति, इस्लाम धर्मानुसार अन्तिम संस्कार-विधि का संकेत है।

(4)

इक दब्बहि इक साड़ियहि, इक दिचनि ढंड लुड़ाइ।
गई मुमारख नानका, है है पहुती आइ॥

शब्दार्थ – दब्बहिं = दफनाते हैं। साड़ियाहि = जलाते हैं। दिचनि = देते हैं। ढंड लुड़ाइ = ऐसे ही खुले मैदान में डाल देते हैं।

भावार्थ – प्रस्तुत साखी में विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा मृतक-शरीर की अन्तिम संस्कार-विधि का संकेत दिया गया है। जैसे मुसलमान शरीर को कब्र में दफनाते हैं, हिन्दू जलाते हैं, पारसी आदि ऐसे ही खुले मैदान में मृतक को पशु-पक्षियों को खाने के लिए छोड़ देते हैं। सन्त दादूदयाल की अन्तिम इच्छानुसार उनके मृतक शरीर का ऐसा ही पवन-संस्कार किया गया था।

(5)

सूरा एह न आखियन, लड़नि दलाँ में जाय।
सूरे सोई नानका, जो मंनणु हुकम रजाय॥

शब्दार्थ – सूरा = शूरवीर। न आखियन = न कहो। लड़नि = लड़ने के लिए। दलाँ में = दो शत्रु-दलों में। मंनणु = मानते हैं। हुकम रजाय = प्रभु-अल्लाह की आज्ञा (अनुकूलता)।

भावार्थ – 'शूरवीरता' की संकल्पना निर्गुण-सन्त कवियों के अपने निजी चिन्तन का परिणाम है। सन्त-सिपाही, 'युद्ध वीर' होने से भिन्न मानसिकता का परिचायक है। युद्ध-वीर अपने शत्रु से युद्ध के मैदान में, आमने-सामने कुछ समय तक ही लड़ता है। उसकी 'शत्रुता' भौतिक सुख-स्वार्थों के लिए होती है। जबकि, सन्त शूरवीर की लड़ाई, बुराइयों, कमजोरियों अथवा तस्करों से जीवन-पर्यन्त होती रहती है। सन्त-शूरवीर की लड़ाई चारों ओर के शत्रुओं से होती है, एक ओर मुख करके लड़ने वाला सच्चा शूरवीर नहीं होता।

(6)

हिरदे जिनके हरि बसै, से जन कहियहि सूर।
कही न जाई नानका, पूरि रह्या भरपूर॥

भावार्थ – जिसके हृदय में प्रभु-निवास करता है, वही शूरवीर है। वह प्रभु सर्वत्र विद्यमान है, भरपूर है।

(7)

कूड़े करहिं तकब्बरी, हिंदू मूसलमान।
लहन सजाई नानका, बिनु नाँवें सुलतानु॥

शब्दार्थ – कूड़े = कूड़े के समान तुच्छ, कूड़ (दुष्ट) अज्ञानी लोग। तकब्बरी (तकब्बुर) (अरबी शब्द) = अभिमान, दर्प, ग़रूर, शेखी, घमण्ड। लहन = प्राप्त करते हैं। सजाई = सजा, दण्ड। बिनु नाँवें = बिना नाम-स्मरण के। सुल्तान = बादशाह, सम्राट्, शासक।

भावार्थ – सन्त-वाणी में 'अहंकार' को भक्ति-मार्ग का सबसे बड़ा शत्रु (बाधक) माना गया है। गुरु नानक का अभिमत है कि अभिमान, दर्प, ग़रूर, शेखी, घमण्ड से परिपूर्ण 'अहंकारी' जो वास्तव में कूड़े के समान तुच्छ हैं, और कूड़ (दुष्ट) अज्ञानी लोग 'प्रभु-न्याय' में दंडित होते हैं। बिना नाम-स्मरण के जीवन-व्यतीत करने वाले सुल्तान (बादशाह, सम्राट्, शासक) भी सजा (दण्ड) प्राप्त करते हैं।

(8)

मन की दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले नानका, जनम चल्या नर खोइ॥

शब्दार्थ – दुबिधा (दुविधा) = द्विविधा, असमंजस, शंका, द्वैत, अनिश्चय। कउड़ी बदले (मुहावरा) = कौड़ी जैसे तुच्छ जड़ पदार्थों के लिए। जनम चल्या नर खोइ = मनुष्य अपना अमूल्य जीवन तक गँवाता रहता है।

भावार्थ – हरि-भक्ति मार्ग पर अग्रसर होने के लिए 'द्विविधा' (असमंजस, शंका, द्वैत, अनिश्चय) चित्त-वृत्ति को स्थिर नहीं होने देती। इसके बिना चेतना सम-दृष्टि जन्य समता-भाव में नहीं पहुँच पाती। फलतः मुक्ति का अनुभव नहीं हो पाता। कौड़ी जैसे तुच्छ जड़ पदार्थों के लिए मनुष्य अपना अमूल्य जीवन तक गँवाता रहता है। अर्थात् मनुष्य को द्विविधा की मानसिकता त्याग कर निश्चय (परिचय) की मानसिकता में अपने जीवन-कार्य सम्पन्न करने चाहिये।

(9)

जित बेले अमृत वसै, जीयाँ होवे दाति।
तित वेले तू उठि बहु, त्रिह पहरे पिछड़ी राति॥

शब्दार्थ – जित बेले = जिस वेला में, ब्रह्म मुहूर्त में। अमृत वसै = अमृत जैसे कल्याणकारी भाव का निवास रहता है। जीयाँ होवे दाति = जीव में दया भाव की अनुभूति होती है। तित बेले = उस वेला में। उठि बहु = उठ कर बैठ। त्रिह पहरे पिछड़ी राति = विगत होती हुई रात्रि के तीसरे प्रहर में।

भावार्थ – 'उपदेश' वर्ग की साखियों का केन्द्रीय भाव सहज जीवन जीने की प्रेरणा देता है। सन्तों ने 'उपदेश' को एक 'शैली' के रूप में अपनाया है। इसके अन्तर्गत आने वाली वाणी 'उपनिषद्' (तत् भाव, उस परम) भाव के निकट पहुँचाना या बैठाना है। ऐसी ही कुछ सलाह-प्रेरणा प्रस्तुत साखी में है। जिस वेला में (ब्रह्म मुहूर्त में) अमृत जैसे कल्याणकारी भाव का निवास रहता है अथवा अमृत भाव-विचार की वर्षा होती है और जीव अर्थात् चेतना में दया भाव की अनुभूति होती है। हे मनुष्य! विगत होती हुई रात्रि के तीसरे प्रहर की उस वेला में उठ कर बैठ और प्रभु-आराधन के लिए प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साधना कर।

(10)

खत्री ब्रह्मण सूद बैस, जातीं पूछि न देई दाति।
नानक भागें पाइयै, त्रिह पहरे पिछली राति॥

शब्दार्थ – 'खत्री ब्रह्मण सूद बैस' = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। 'जातीं पूछि न देई दाति' = वह प्रभु जातियाँ पूछ कर दया नहीं करता, अपितु मुक्त भाव से सब पर दया करता है। भागें पाइये = कर्मानुसार-भाग्य से प्राप्त होता है। त्रिह पहरे पिछली राति = रात्रि के पिछले प्रहर ब्रह्म-वेला में।

भावार्थ – गुरु नानक का अभिमत है कि प्रभु-कृपा जातिगत उच्चता-हीनता पर निर्भर नहीं है। वह प्रभु जातियाँ पूछ कर दया नहीं करता, अपितु मुक्त भाव से सब पर दया करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कुल में जन्म कर्मानुसार-भाग्य से प्राप्त होता है। हे मनुष्य ! रात्रि के पिछले प्रहर ब्रह्म-वेला में प्रभु-आराधना कर।

(11)

सबद न जानउ गुरु का, पार परउ कित बाट।
ते नर डूबे नानका, जिन का बड़ बड़ ठाट॥

शब्दार्थ – 'सबद न जानउ गुरु का' = गुरु-वाणी का मंतव्य समझे बिना। 'पार परउ कित बाट' = भव-सागर का संतरण कैसे सम्भव है ? डूबे = डूब जाते हैं। बड़ बड़ ठाट = जिनका बड़ा-वैभवशाली ठाट-बाट है।

भावार्थ – अमीरीजन्य वैभव-प्रदर्शन को मनुष्य के गर्त्त (पतन) का कारण बताते हुए नानक कहते' हैं। गुरु वाणी (परम मूल्य) का मंतव्य समझे बिना। जीवन-मार्ग, जीवन-यात्रा, भव-सागर का संतरण कैसे सम्भव है ? अर्थात् मर्म (ज्ञान-अनुभव) की बात समझे बिना जीवन-साफल्य सम्भव नहीं है। जिनका बड़ा-वैभवशाली ठाट-बाट है ऐसे वैभव-ठाठ में लिप्त हुए एवं अहंकार से भारी हुए मनुष्य भव-सागर में डूब जाते हैं।

(12)

देखि कै सूनी झोपड़ी, चोरी करदे चोरु।
वसि पये धर्मराय दै, कड्ढि लये सभ खोरु॥

शब्दार्थ – सूनी = निर्जन। झोपड़ी = घर, आवास। करदे = करते हैं। चोरु = छिपकर। वसि = वही फिर। पये = पाते हैं। धर्मराय = यमराज। दै (दे) (पंजाबी शब्द) = के। कड्ढि लये = काढ़ लिए, निकाल लिए। सभ खोरु = सब बदले में।

भावार्थ – प्रभु-प्रेम से रहित सूने हृदयरूपी घर में विषय-वासना रूपी चोर छिपकर निवास करते हैं। फिर ऐसे मनुष्य यमराज (दण्डाधिकारी) के वशीभूत होकर दण्ड भी पाते हैं। वह उनकी कुकृत्यों के बदले में सारी कोर-कसर निकाल लेता है।

(13)

बरतु नेमु तीरथु भ्रमैं बहुतेरा बोलणि कूडु।
अंतरि तीरथु नानका, सोधत नाहीं मूड़॥

शब्दार्थ – बरतु नेमु = व्रत-नेम। तीरथु भ्रमैं = तीर्थ-भ्रमण करते हैं। बोलणि कूडु = कूड़ा (निरर्थक) बोलते हैं। अंतरि तीरथु = आन्तरिक तीर्थ, पवित्र-हृदय का तीर्थत्व। सोधत नाहीं = शोधता, खोजता नहीं। मूड़ = मूर्ख, नासमझ।

भावार्थ – प्रस्तुत साखी पाखण्डी और आडम्बरी लोगों की दुष्प्रवृत्ति को उजागर करती है। नानक कहते हैं कि मूर्ख, नासमझ मनुष्य आन्तरिक तीर्थ (पवित्र-हृदय) का तीर्थत्व नहीं खोजता। चिन्तन-मनन के माध्यम से घट ही में व्याप्त उस परम तत्त्व का अन्वेषण नहीं करता। निरर्थक बकते रहने वाले पाखण्डियों के चक्कर में पड़कर व्रत-नेम और तीर्थ-भ्रमण करते रहते हैं।

(14)

लै फुरमान दिवान दा खसि प्यादे खाहिं।
बाँ ही बद्धे मारियहि, मारें दे कुरलाहिं ॥

शब्दार्थ – फुरमान (फर्मान) (फारसी शब्द) = शाही हुक्म, राजादेश, हुक्म। दिवान दा = दीवान-हाकिम का। खसि (अरबी शब्द) = तंदुरुस्त, माँस वाला हृष्ट-पुष्ट बकरा। प्यादे = नौकर-चाकर और सिपाही। बाँ ही = वे ही। बद्धे मारियहि = मुश्क बाँध कर मारे जाएँगे। मारें दे कुरलाहिं = मार से चिल्लाएँगे।

भावार्थ – अभी तो नौकर-चाकर और सिपाही अपने दीवान की आज्ञा से, मुख-स्वाद के लिए जीव-हत्या करके बकरे का माँस खाते हैं और मौज उड़ाते हैं। बाद में धर्मराज की आज्ञा से वे ही पापी मुश्क बाँधकर मारे जाएँगे। जब मार पड़ेगी तब चिल्लाएँगे और बकरे की तरह दीन-विवश होकर मिमियाएँगे।

(15)

पांधे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्लां कोरु।
नानक तिनां पास न भिटीयै, जो सबदे दे चोरु ॥

शब्दार्थ – पांधे = पाधा, पुरोहित, ब्राह्मण। मिस्सर = मिश्र, अपने को श्रेष्ठ मानने वाले कथावाचक मिश्र-ब्राह्मण। अंधले = अन्धे, नासमझ, अज्ञानी। काजी = न्यागकर्त्ता क़ाजी। मुल्लां = अजान देने वाले (मौलवी) मुल्ला। कोरु (कोरे) = खाली हैं, सत्य-ज्ञान (तत्त्व) से रहित। 'तिनां पास न भिटीयै' = उनके पास न भेंटिए (जाइए)। 'जो सबदे दे चोरु' = जो शब्दों (वाणी) के चोर हैं।

भावार्थ – नानक कहते हैं कि पुरोहित ब्राह्मण, कथावाचक मिश्र-ब्राह्मण, न्यागकर्त्ता क़ाजी और अजान देने वाले मौलवी-मुल्ला अन्धे, नासमझ, अज्ञानी और कोरे (खाली) हैं अर्थात् उनमें तत्त्व-ज्ञान,

सत्य-ज्ञान नहीं है। भूलकर भी ऐसे अज्ञानियों के पास मत जाइए अर्थात् उनका संसर्ग भी न करिए, जो शब्दों (वाणी) के चोर हैं अर्थात् जो सुनी-सुनाई या दूसरे की वाणी को अपना शब्द बताकर बोलते हैं, कविता की चोरी करते हैं और जो शब्द को अनुभव से नहीं जोड़ पाए, ऐसे लोगों से बचना चाहिये।

(16)

सचु तापरु जाणीऐ, जा रिदै सचा होइ।
कूड़ की मलु उतरें, तनु करै हछा धोइ॥

शब्दार्थ – सचु = सत्य। जाणीऐ = जानना (समझना) चाहिये। जा = जिसके। रिदै = हृदय में। सचा हो = सत्य सत्ता का अनुभव प्रतिष्ठित हो। कूड़ = कूड़ा, हीनता, बुराई। मलु = दोष, कल्मष। तनु = शरीर। हछा = अच्छा, स्वच्छ। धोइ = धोकर, प्रक्षालित करके।

भावार्थ – सच्चा उसे जानना (समझना) चाहिये जिसके हृदय में सत्य सत्ता का अनुभव प्रतिष्ठित हो। ऐसे सच्चे सन्त के संसर्ग से हृदय के कल्मष आदि दोष और बुराइयाँ मिट जाती हैं तथा तन-मन प्रक्षालित होकर स्वच्छ और निर्मल हो जाता है।

(17)

कुंभे बधा जलु रहै, जल बिनु कुंभ न होइ।
गिआन का बधा मनु रहै, गुर बिनु गिआन न होइ॥

शब्दार्थ – कुंभे = कुम्भ-घट में। बधा = बँधा हुआ, भरा हुआ। गिआन = ज्ञान-विवेक।

भावार्थ – कुम्भ की सार्थकता तभी है जब वह जल से परिपूर्ण हो, जलरहित कुम्भ खाली घड़ा कहलाता है। इसी प्रकार ज्ञान-विवेक से सम्पन्न होने पर ही मनुष्य-जीवन की सार्थकता है। ज्ञान-विवेक की चेतना से सम्पन्न मन ही, स्थित-प्रज्ञ मन रह पाता है। बिना गुरु (परम मूल्य) के ज्ञान की स्थिति सम्भव नहीं।

(18)

सभु को निवै आपकउ, परकउ निवै न कोइ।
धरि ताराजु तोलीऐ, निवै सु गउरा होइ॥

शब्दार्थ – सभु को = सब कोई। आपकउ = स्वयं के लिए। निवै = झुकता है। परकउ = दूसरे के लिए। 'धरि ताराजु तोलीऐ' (मुहावरा) = तराजू में रखकर तोलना। गउरा = गरुवा, भारी मूल्यवान। निवै सु = जो नमन करता है। गउरा होइ = गुरु-गम्भीर होता है, प्रतिष्ठा (महत्त्व) प्राप्त करता है।

भावार्थ – विनम्रता (नमन) गुरुत्वपूर्ण जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। नानक कहते हैं कि सब कोई अपने आपके लिए, स्वयं सम्मान के लिए झुकते हैं, नमन करते हैं, दीनता दिखाते हैं। अपने से भिन्न दूसरे के लिए कोई नहीं झुकता। जो सन्तुलन-न्याय को महत्त्व देकर परहित के लिए नमन करता है, वही गुरु-गम्भीर होता है, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

(19)

जिनी न पाइउ प्रेम रसु, कंत न पाइउ साउ।
सूँने घर का पाहुणा, जिउ आइआ तिउ जाउ॥

शब्दार्थ – जिनी = जिन्होंने। 'जिनी न पाइउ प्रेम रसु' = जिन्होंने प्रेम रस प्राप्त नहीं किया। कंत = प्रिय। साउ = उसने। 'सूँने घर का पाहुणा' (कहावत) = सूने घर के अतिथि के समान सत्कार न पाने वाला। 'जिउ आइआ तिउ जाउ' = जैसा आता है, वैसा ही लौट जाता है।

भावार्थ – जिन्होंने 'प्रेम रस' अर्थात् प्रेमतत्त्व प्राप्त नहीं किया, सच्चे अर्थों में प्रेम-भाव का अनुभव नहीं किया, प्रेम-भाव (तत्त्व) का जीवन में आस्वाद नहीं लिया, वह प्रिय-इष्ट (लक्ष्य) की प्राप्ति नहीं कर पाता। ऐसा मनुष्य सूने (जनरहित) घर के अतिथि के समान सत्कार न पाने वाला होता है। वह जैसा आता है, वैसा ही असत्कृत हुआ उलटे पाँव लौट भी जाता है।

(20)

वैदु बुलाइआ वैदगी, पकड़ि ढंढोले बाँह।
भोला वैदु न जाणई, करक कलेजै माँहि॥

शब्दार्थ – वैदु = वैद्य। वैदगी = उपचार के लिए। ढंढोले बाँह = नब्ज देखता-टटोलता है। भोला = बुद्धू, अनुभवहीन। करक = कसक, पीड़ा, दर्द।

भावार्थ – बीमार के उपचार के लिए वैद्य को बुलाया। वैद्य आकर बीमार (प्रिय-विरही) की नब्ज देखता-टटोलता है। बुद्धू अनुभवहीन वैद्य नहीं जान पाता कि बीमार कौनसे रोग से ग्रस्त है क्योंकि, बीमारी-वेदना शरीर में न होकर चेतना में है। विरह की कसक हृदय (भाव-चेतना) में होती है, शरीरांगों में नहीं।

❖❖❖

रसखानि

प्रेम सम्बन्धी रीति-नीति

दोहा

(1)

प्रेम प्रेम सोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय॥

भावार्थ – सांसारिक जन प्रेम की चर्चा तो करते हैं किन्तु उसके रहस्य को कोई नहीं जानता और यदि प्रेम के रहस्य को जान लिया जाए तो रोना किस बात का !

(2)

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग, बहुरि, जात नहीं रसखान॥

भावार्थ – प्रेम (ब्रह्म की भाँति) अगम, अनुपम और अमित है। यह वह सागर है जहाँ एक बार प्यासा पहुँच जाए तो उसे अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं रहती।

(3)

प्रेम-बारुनी छानिकै, बरुन भय जलधीस।
प्रेमहि तें विष पान करि, पूजे जात गिरीस॥

भावार्थ – प्रेम-मदिरा का पान कर वरुण जलधीश हो गए और शंकर विश्व-पूज्य हो गए।

(4)

प्रेम रूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल॥

भावार्थ – प्रेम में पड़ने के बाद मनुष्य का संसार, प्रकृति, प्राणी और पदार्थों के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। उसे अब सृष्टि में सब ओर सौन्दर्य और मंगल ही नज़र आने लगता है। स्वयं अपना तन-मन उसे अब परिवर्तित प्रतीत होने लगता है। उसकी रुचि और प्रकृति सकारात्मक होने लगती है।

(5)

कमलतंतु सों छीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ौ बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार॥

भावार्थ – प्रेम कमलतन्तु से भी अधिक क्षीण और तलवार की धार से भी अधिक तीक्ष्ण है। प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा भी है और उतना ही टेढ़ा भी।

(6)

भले बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किए उपाय॥

भावार्थ – केवल वेद-शास्त्रों के पठन-पाठन से क्या लाभ! जब तक कि हृदय को प्रेम का पाठ नहीं पढ़ाया। प्रेम-रहित ज्ञानार्जन तो केवल ज्ञान के गर्व में बढ़ोतरी ही करेगा।

(7)

श्रुति, पुरान, आगम, स्मृतिहिं, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुवार॥

भावार्थ – प्रेम नाना पुराण निगमागम का सार है। यह ज्ञान, कर्म तथा उपासना का मूल तत्त्व है।

(8)

आनँद-अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानन्द, कै ब्रह्मानंद बखान॥

भावार्थ – हृदय में प्रेम के उत्पन्न हुए बिना संसार में कोई रस नहीं है। प्रेमभाव से रहित व्यक्ति को संसार व्यर्थ, सूना, अनर्गल एवं सारहीन प्रतीत होता है। ज्ञानीजन परमेश्वर के अनुभव में उस आनन्द को खोजते हैं जबकि सांसारिक जन भौतिक विषयों में आनन्द तलाशते हैं। वास्तविक आनन्द का अनुभव प्रेमपूर्ण हृदय में ही सम्भव है।

(9)

शास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलबी कुरान।
जुए प्रेम जान्यों नहीं, किहा कियो रसखान॥

भावार्थ – चाहे शास्त्रज्ञ पण्डित हो जाओ अथवा मौलवी हो जाओ ! किन्तु यदि सब कुछ पढ़कर भी प्रेम को हृदयंगम नहीं किया तो बड़े-बड़े ग्रन्थ पढ़ना व्यर्थ है।

(10)

काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य॥

भावार्थ – जब तक मन में प्रेम का अंकुरण नहीं होता तब तक व्यक्ति काम, क्रोध, अहंकार, मोह-ममता, भय, लोभ, द्वेष-विद्वेष आदि दुर्गुणों में लिप्त रहता है। प्रेम इन समस्त दुर्गुणों से परे एक विशुद्ध भाव है जो हृदय को परिष्कृत करता है।

(11)

अति सूछम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इकरस भरपूर॥

भावार्थ – कहने को प्रेम बड़ा सरल है पर वास्तव में यह उतना ही कठिन भी है। अत्यन्त महीन, सूक्ष्म एवं कोमल प्रेमभाव को हृदयंगम करने के लिए पहली शर्त्त है, चित्त का सदैव निष्कलुष, निष्कपट और अहंकारविहीन होना।

(12)

दंपतिसुखअरु विषयरस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इनतें परे बखानिए, शुद्ध प्रेम रसखान॥

भावार्थ – प्रेम का स्तर बहुत उदात्त है। उसे सांसारिक सम्बन्धों, भोग-विलास के साधनों से जोड़कर मत देखिए ! शुद्ध प्रेम का स्वरूप पति-पत्नी के साहचर्य-सुख और विषय-भोग सम्बन्धी इन्द्रिय-सुखों से परे है। भगवद्प्रेम ही वास्तविक और शुद्ध प्रेम है। यह भाव पर आधारित होता है, पूजा-पाठ, भरोसा, ध्यानादि भक्ति के सोपान उसके उपक्रम हो सकते हैं किन्तु तत्त्वतः वह इनसे भी परे है।

(13)

मित्र कलत्र, सुबन्धु, सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सबिसेह॥

भावार्थ – केवल ईश्वरीय प्रेम ही शुद्ध प्रेम है। निज मित्र, सहधर्मिणी, भ्रातागण, पुत्रादि सांसारिक स्वजनों के प्रति प्रेम तो लौकिक सहज-स्वाभाविक स्नेह है उसमें वह शुद्धता नहीं जो भगवद्प्रेम में है।

(14)

प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस॥

भावार्थ – सांसारिक जन जिस लौकिक स्नेह को प्रेम समझ रहे हैं, शुद्ध प्रेम उतना सरल-सहज नहीं है। शुद्ध प्रेम विरहजनित होता है, वहाँ हृदय में मिलन की उत्कण्ठा की फाँस सदैव चुभी रहती है। प्रियतम के दर्शन और मिलन की आतुरता में प्राण छटपटाते रहते हैं किन्तु छूटते नहीं। सच्चे विरही का शरीर मृतप्राय होता है वहाँ केवल साँस चलती रहती है।

(15)

प्रेम हरी को रूप है, त्यौं हरि प्रेमसरूप।
एक होई द्वै यों लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप॥

भावार्थ – प्रेम ही ईश्वर का प्रतिरूप है और प्रभु साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं। दोनों में पार्थक्य का कोई प्रश्न ही नहीं। दोनों एक-दूसरे से इस प्रकार अभिन्न हैं जैसे सूरज से धूप और धूप से सूरज।

(16)

ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, बिश्वास, बिवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक॥

भावार्थ – सच्चे प्रेम के अभाव में समूचे संसार एवं ब्रह्माण्ड भर के ज्ञान-ध्यान, विद्या-बुद्धि, विवेक-विचार, अन्यान्य सम्प्रदाय और सिद्धान्त आदि अकारथ हैं।

(17)

कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर, कोउ कहत अनोखी ढार॥

भावार्थ – रसखानि के अनुसार प्रेम प्रभु-रूप है। ईश्वर के समान ही यह अगोचर, अगोचर और वर्णनातीत है। यह ब्रह्मानन्द की अनुभूति के समान सूक्ष्म और विलक्षण है। विभिन्न विरहीजन अपनी भिन्न-भिन्न अनुभूतियों के अनुसार कभी इसे फाँसी, तलवार, बरछी, भाला और तीर तो कभी विलक्षण ढाल कहते हैं।

(18)

पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।
मरत जियै, झुकतो थिरैं, बनैं सु चकनाचूर ॥

भावार्थ – सच्चा प्रेमी मृत्यु से भयभीत नहीं होता। वह उसे एक यात्रा का अवसान और दूसरी यात्रा का प्रारम्भ समझता है। मनुष्य प्रेम के मार्ग में मरकर ही अमर होता है। प्रेम में आत्मसर्पण कर प्राण देकर जीव सदा जीवित रहता है। रसखानि ने प्रेम के इस स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है – साधक अपने व्यक्तित्व को पूर्णतया ईश्वर को समर्पित कर अपनी इच्छाओं एवं अहम् भावनाओं को समाप्त कर दे। उसकी स्मृति में इतना तल्लीन हो जाय कि उसे अपनी सुधि न रहे। रसखानि इस आत्म-विस्तृति और समर्पण में ही प्रेम की उदात्तता मानते हैं। इस स्थिति में साधक को अपना ज्ञान नहीं रहता और आत्मा का परमात्मा में वास हो जाता है। आत्मा के समस्त रागों और इच्छाओं का अन्त हो जाता है।

(19)

पै एतो हूँ हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल ॥

भावार्थ – प्रेम कोई सामान्य खेल नहीं; इस विलक्षण खेल को वही सच्चा शूरवीर खेल सकता है जिसमें अपना सर्वस्व न्योछावर करने की कुव्वत हो। रसखानि ने प्रेम-वर्णन विरोधमूलक उक्तियों से भी किया है। वे कहते हैं कि यह ऐसा विलक्षण खेल है जहाँ अपना सर्वस्व (प्राण, अहंकारादि) न्योछावर करने वाला जाँबाज़ ही लक्ष्य (भगवद्प्रेम) तक पहुँच पाता है तब भक्त का ईश्वर से मिलन होता है, परमात्मा से एकाकार सम्भव हो पाता है।

(20)

सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि, वाह वाह ही लेहु ॥

भावार्थ – प्रिय की विशेषताओं में अपनी विशेषताओं को मिला देना प्रेम है। प्रेम की विशेषता यह होती है कि निज के व्यक्तित्व को समाप्त कर दिया जाय। यह आनन्द ऐसा होता है कि इस पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। यह भगवदनुग्रह है जो निरन्तर विनय करते रहने तथा आकांक्षा करते रहने से प्राप्त होता है। अपना अहंकार विनष्ट करके, हृदय में विरह का ज़ख्म लिये और आत्म-विस्मृति के बदले नेत्रों को केवल प्रियतम की बाँकी मुस्कान के दर्शन की आकांक्षा रहती है।

(21)

अकथ-कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक भे, मन मिलाइ महबूब॥

भावार्थ – प्रेम में वह सामर्थ्य है कि यह दो भिन्न तन-मन को एक कर सकता है। ऊपरी तौर भिन्न भासित होने पर भी तदाकार हो जाता है।

(22)

याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भए, नस जाहिं सब, बँधे जगत के नेम॥

भावार्थ – प्रेम की उदात्त अवस्था में साधक इतना निर्लिप्त हो जाता है कि सब कुछ त्याग कर देता है। मुक्ति भी उसकी दृष्टि में निस्सार हो जाती है। हृदय में प्रेम उत्पन्न होने पर सांसारिक नियम और बन्धन स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

(23)

जदपि जसोदानंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भईं अनन्य॥

भावार्थ – प्रियतम श्रीकृष्ण का सान्निध्य पाने वाले यशोदा, नन्द और संगी-साथी ग्वाल-बालकों का जीवन धन्य है किन्तु प्रियतम का विछोह झेलने वाली, सतत उस विरहानल में जलने वाली गोपियाँ और उनका प्रेम अनन्य, अप्रतिम, अनुपम है।

(24)

रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल, महान।
सदा एकरस, शुद्ध सोई, प्रेम अहै रसखान॥

भावार्थ – प्रेमरस से सिक्त, सहज भाव से आप्लावित, आकांक्षारहित-निःस्वार्थी, स्थिर-अडिग, सर्वस्व समर्पण को तत्पर, सदैव एकनिष्ठ और दर्शनाभिलाषी, विरहातुर चित्त वाला प्रेम ही शुद्ध प्रेम है।

(25)

तोरी मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छविहिं लखि, भए मियाँ रसखान॥

भावार्थ – अपने यौवन काल में रसखानि लौकिक प्रेम में उन्मत्त थे। कालान्तर में वही लौकिक प्रेम उदात्तीकृत हो कृष्ण-प्रेम में परिवर्तित हो गया। अपने प्रेम के उदात्तीकरण के सम्बन्ध में रसखानि कहते हैं कि उस मानवती प्रेयसी पर अनुरक्त मन को बलपूर्वक हटाया। उस मोहिनी की सम्मोहक रूप-राशि के दर्प को चूर्ण-चूर्ण कर सैयद इब्राहीम खाँ का मन मनभावन प्रेम-प्रभु, रसिक शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण के अप्रतिम सौन्दर्य का दीवाना हो गया और इस तरह मियाँ इब्राहीम सच्चे अर्थों में रसखानि हो गए।

❖❖❖

जमाल

दोहा

(1)

तिन तिन सत, दुइ तीन, चर पाँच छवो, सत पाँच।
बिघ्न हरहु कल्यान करु, भज जमाल करि जाँच॥

(2)

तिन तिन सत, अठ दूइ, सत दुइ, अठ दुई, पँच एक।
तीन पुनहि मम कण्ठ मँह, कर जमाल करि टेक॥

(3)

तिन तिन सत, छौ पाँचो करि ध्यान।
नासहु दुख दारिद सबै, कहत जमाल सुजान॥

(4)

तिन तिन सत, छौ पाँच, अठ, तीन, एक, पँच तीन।
छवो, सात चर ध्यान धरि कहत जमाल प्रबीन॥

(5)

तिन तिन सत, पँच तीन चर, सात दूइ, दूइ तीन।
एक अंक यहि भाँति लिखि, सुकबि जमाल प्रबीन॥

❖❖❖

रामसहाय दास

दोहा

(1)

प्रेम प्रीती सनेह बिनु, सब झूठे संसार।
संबत ससि रस ससि, कातिक सुदि ससिबार ॥

(2)

ज्ञान रस पीया जान के, करिय बिचारि बिचारि ।
माया मोह के फँदे छोड़ि, तर आन कछु जारि ॥

(3)

साधु मिलै सुख उपजै, भाव भगति रस पाय।
सति सिरोमनि साईयाँ, जहँ आनंद अंग नमाय ॥

(4)

टका कमा कर खाय, साधु जग में ऐसो होवै।
माँगत आवै शरम, प्रभु नाम लिये सोवै ॥

❖❖❖

सम्मन

दोहा

(1)

सम्मन मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिवो, तेहि सीखो सब धूर॥

(2)

बिनु ज्ञान अनुग्रह बिनु, मन दृढ़ न होवै।
मेरी जान ब्रह्म को, बिचारिबो सुख होवै॥

(3)

कहा कहौं मृदुल सुभाव, सरस सम्मन सुवास।
तेहि कौ सुयश जान, गायौ हरषि उल्लास॥

(4)

ज्ञान अनुग्रह सो कियौ, औरन को मत छारि।
कहत सुनत सम्मन सब, अन्य सभा में डारि॥

(5)

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुःख होय।
सम्मन या संसार में, प्रीति करौ जनि कोय॥

(6)

सम्मन चहौ सुख देह कौ, तौ छाँड़ौ ये चारि।
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नारि॥

सोरठा

(7)

सम्मन रस की खान, सो हम देखा ऊख में।
ताहू में एक हानि, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं॥

❖❖❖

बेताल

छप्पय

(1)

मरै सूम जिजमान मरै कटखन्ना टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वो पुरुष निखट्टू।
पुत्र वही मर जाय जो कुल में दाग लगावै।
मित्र वही मरि जाय अड़ी पर काम न आवै।
बेनियाव राजा मरै तो इनके मरे न रोइए।
बेताल* कहै बिक्रम सुनो जबै नींद भर सोइए॥

(2)

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू।
बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै।
अरु बेनियाउ राजा मरै तबै नींद भरि सोइए।
बेताल कहै बिक्रम सुनो एते मरे न रोइए॥

(3)

टका करै कुल हूल टका मिरदंग बजावै।
टका चढ़ै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै।
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़-लड़ैया।
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन।
बेताल कहै बिक्रम सुनो धिक्क जीवन एक टके बिन॥

(4)

दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्न गयो पाताल पाप भयो बरन बरन में।
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुआरी।
घर घर में बेपीर दुखित भे सब नर-नारी।
अब उलटि दान गजपति माँगे सील सँतोष कितै गयो।
बेताल कहै बिक्रम सुनो यह कलियुग परगट भयो॥

(5)

ससि बिनु सूनी रैनि ज्ञान बिनु हिरदय सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र पात बिनु तरुवर सूनो।
गज सूनो बिन दंत सलिल बिनु सायर सूनो।
बिप्र सूनो बिनु बेद और बन पुहुप बिहूनो।
हरिनाम भजन बिनु संत अरु घटा सून बिनु दामिनी।
बेताल कहै विक्रम सुनो पति बिनु सूनी कामिनी॥

(6)

बुधि बिनु करै बेपार दृष्टि बिनु नाव चलावै।
सुर बिन गावै गीत अर्थ बिनु नाच नचावै।
गुन बिन जाय बिदेस अकल बिन चतुर कहावै।
बल बिन बाँधो जुध्द हौस बिन हेत जनावै।
अन इच्छा इच्छा करे अनदीठी कहै बात।
बेताल कहै बिक्रम सुनो यह मूरख की जात॥

(7)

पग बिन कटे न पंथ बाहु बिन हटे न दुर्जन।
तप बिन मिलै न राज भाग्य बिन मिलै न सज्जन।
गुरु बिन मिलै न ज्ञान द्रव्य बिन मिलै न आदर।
बिना पुरुष शृंगार मेघ बिन कैसे दादुर।
बेताल कहै बिक्रम सुनो बोल बोल बोली हटे।
धिक्क धिक्क धिक्क ता पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे॥

* वेताल (संस्कृत)

अर्थ – 1. एक प्रकार की भूतयोनि; 2. छप्पय छन्द के छठे भेद का नाम; 3. अपनी छाया; 4. द्वारपाल।

❖❖❖